तृतीय अध्याय

" 'धरती धन न अपना' उपन्यास में चित्रित दलित-समाज का यथार्थ "

तृतीय अध्याय

''धरती धन न अपना' उपन्यास में चित्रित दलित समाज जीवन का यथार्थ''

विषय-प्रवेश -

मानवी जीवन में समाज का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। व्यक्ति समाज का अंग होने के कारण विभिन्न सामाजिक प्रथा-परंपराओं का पालन करता हुआ दिखाई देता है। व्यक्ति और समाज दोनों परस्पराश्रित हैं। अतः व्यक्ति के बिना समाज की और समाज के बिना व्यक्ति की कल्पना भी नहीं की जाती। व्यक्ति और समाज का परस्पर संबंध साहित्य में प्रतिबिंबित होता है।

आधुनिक काल में साहित्य के माध्यम से निम्नवर्गों में चेतना जगाने का प्रयास अनेक साहित्यकारों ने किया। साहित्य में समाज का प्रतिबिंब होता है। समाज के विभिन्न वर्गों की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति तथा समस्याओं का यथार्थ चित्रण रचनाकार अपने साहित्य में करता है। इस संदर्भ में डॉ. रविकुमार अनु के विचार दृष्टव्य हैं- ''उच्च वर्ग से लेकर निम्न वर्ग तक, ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक, महाजन से लेकर कृषक तक, राजनेता से लेकर निरीह जनता तक, अफसर से लेकर चपरासी तक, पारिवारिक बूढ़ों से लेकर नई पीढ़ी तक की प्रत्येक समस्या को हमारे रचनाकार ने वाणी दी है।''[1] यह कहना गलत नहीं होगा कि आज रचनाकार अपने 'भोगे हुए' यथार्थ को साहित्य में अभिव्यक्त कर रहा है। यह उसकी स्वयं की अनुभूति होती है।

आजकल हिंदी साहित्य में सदियों से पीड़ित-शोषित दलित समाज का यथार्थ चित्रण रचनाकारों ने किया है। दलित-विमर्श के रूप में यह साहित्य माना जाता है, परंतु साहित्य को दलित और गैर-दलित रचनाकार की चौखट में रखने से हिंदी साहित्य में दलित विमर्श के प्रति साशंकता निर्माण हुई है। पंजाब प्रांत के लेखक जगदीशचंद्र के संदर्भ में भी

---

1. सं. तरसेम गुजराल, विनोदी साही - जगदीशचंद्र : एक रचनात्मक यात्रा, पृष्ठ - 156

इस प्रकार के सवाल उठाए गए। जगदीशचंद्र ने पंजाब प्रांत के घोड़ेवाहा गाँव को केंद्रित मानकर दलित समाज का यथार्थ चित्रण 'धरती धन न अपना' उपन्यास में किया है। इस संदर्भ में कुंवरपालसिंह लिखते हैं, ''जगदीशचंद्र ने यह सिद्ध कर दिया है कि दलितों की व्यथा-कथा लिखने के लिए दलित होना आवश्यक नहीं है। आज यह भ्रम फैलाया जा रहा है कि दलितों की व्यथा-कथा दलित ही लिख सकता है। लेखन में विशेषकर कथा-साहित्य में यह फार्मूला निरर्थक है। यदि ऐसा होता तो वेश्या, नारी, पीड़ितों और अछूतों पर दुनिया में जिन लोगों ने लिखा था, कोई वह न था जिसकी व्यथा-कथा लिखी है। उसी तरह चोरों और शराबियों पर लिखने के लिए चोर और शराबी होना आवश्यक नहीं है।''[1] यह सही है कि लेखक जगदीशचंद्र उच्चवर्गीय होते हुए भी उन्होंने समाज में जो देखा अनुभूत किया उसकी अभिव्यक्ति अपने साहित्य में की। दलित और गैर दलित इस प्रकार का हिंदी साहित्य में भ्रम फैलाया गया है। अतः महत्त्व इस बात को देना चाहिए कि रचनाकार ने कितनी सशक्तता के साथ दलितों की यथार्थ स्थिति का चित्रण किया है। न कि रचनाकार दलित है या गैर-दलित।

आधुनिक हिंदी साहित्य में यथार्थवाद यह साहित्यिक प्रवृत्ति मानी जाती है। यथार्थ के अंतर्गत सत्य एवं वास्तविक स्थिति का चित्रण होता है। डॉ. राजेंद्रसिंह चौहान के अनुसार- ''यथार्थ में चिंतन होना चाहिए, जीवन की सच्चाईयाँ भी होनी चाहिए। यथार्थ में जीवन को एक प्रेरणा देने का कार्य निभाना भी अनिवार्य है। उच्चकोटि का यथार्थवाद मानव समाज को पूर्ण इकाई के रूप में प्रयुक्त करता है। साहित्य का निर्माता एक संवेदनशील रचनाकार होता है।''[2] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि साहित्य में यथार्थ का होना आवश्यक है। संवेदनशील रचनाकार अपने साहित्य में समाज का वास्तविक तथा सत्य चित्रण करता है।

3.1 यथार्थ : अर्थ एवं स्वरूप -

रचनाकार मानव जीवन के यथार्थ को आधार बनाकर कृति का निर्माण करता है। इसलिए माना जाता है कि रचना में मानव-जीवन का यथार्थ एवं समग्र चित्रण होता है।

---

1. डॉ. तरसेम गुजराल, विनोद साही - जगदीशचंद्र : एक रचनात्मक यात्रा, पृष्ठ - 124
2. डॉ. राजेंद्र सिंह चौहान - मालती जोशी का कथात्मक साहित्य, पृष्ठ - 42

आधुनिक काल में साहित्य की उपन्यास विधा यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए सशक्त विधा मानी जाती है। सत्य और यथार्थ घटनाओं का समावेश उपन्यास को प्राणवान बनाता है। अतः 'यथार्थ' शब्द का व्युत्पत्तिगत अर्थ एवं स्वरूप इस प्रकार है-

3.1.1 यथार्थ : व्युत्पत्तिगत अर्थ -

यथार्थ का शब्दशः अर्थ 'जैसा है वैसा दीखाना' ऐसा माना जाता है। जीवन की सच्ची अनुभूति ही यथार्थ है। प्रत्यक्ष ज्ञान या अनुभूति को यथार्थ कहते हैं। यथार्थ जीवन और जगत् के तथ्यों का संग्रह करता है। मन के विविध भावों को यथार्थ अविकृत एवं अरंजित रूप में प्रकट करता है। यथार्थ में वस्तु सत्य को अविकल रूप में प्रस्तुत करने की कोशिश की जाती है।

विभिन्न शब्दकोश के अनुसार 'यथार्थ' शब्द का अर्थ इस प्रकार दिया है-

'यथार्थ' - ''ठीक, उचित, जैसा है वैसा सत्य।''[1]

'यथार्थ' - ''ठीक, वाजिब, उचित, जैसा होना चाहिए वैसा।''[2]

'यथार्थ' - ''जो अपने अर्थ (आशय, उद्देश्य, भाव आदि) के ठिक अनुरूप हो। ठीक। वाजिब। उचित, जैसा होना चाहिए, ठिक वैसा।''[3]

अतः वास्तविकता का सत्य चित्रण ही यथार्थ है। 'यथार्थ' शब्द के साथ 'वाद' जुड़ने से 'यथार्थवाद' हो गया। हिंदी साहित्य में यथार्थवाद शब्द अंग्रेजी के 'Realisam' का प्रतिरूप माना जाता है। यथार्थवादी रचनाकार मानव जीवन एवं समाज का संपूर्ण वास्तविक चित्र उपस्थित करता है और अपने साहित्य की विषयवस्तु काल्पनिक संसार से न लेकर वास्तविक संसार से लेता है।

3.1.2 यथार्थ का स्वरूप -

आदर्श की प्रतिक्रिया रूप में यथार्थवाद का निर्माण हुआ। यथार्थवाद और आदर्श दोनों परस्पर विरोधी तत्त्व हैं। वस्तुतः यथार्थवाद की नजर वस्तु के वर्तमान रूप पर

---

1. सं. श्री. नवलजी - नालंदा विशाल शब्दसागर, पृष्ठ - 1135
2. रामचंद्र वर्मा - संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर, पृष्ठ - 825
3. सं. रामचंद्र वर्मा - मानक हिंदी कोश, पृष्ठ - 435

होती है तो आदर्शवाद की नजर वस्तु के भविष्य पर होती है। आदर्शवाद वस्तु की ऐसी कल्पना करता है कि जिसमें वस्तु सुंदर, स्वच्छ और पवित्र प्रतिभासित हो। यथार्थवाद वस्तु के गुण और सौंदर्य को ग्रहण कर उसके अवगुण को छोड़ देता है। अतः आदर्शवाद और यथार्थवाद परस्पर विरोधी होते हुए भी परस्पराधारित होते हैं। क्योंकि यथार्थ को देखकर ही आदर्श की स्थापना की जाती है।

यथार्थवाद वेदना से मुखरता नहीं है। बल्कि मानव जीवन की कुंठाएँ, वर्जनाएँ एवं असंतोषप्रद स्थितियों की भयंकरता का चित्रण साहस के साथ होता है। यथार्थ की दृष्टि तथ्याधारित है और इन्हीं तथ्यों का अन्वेषण करना ही यथार्थवाद की प्रवृत्ति होती है। डॉ. त्रिभुवनसिंह के विचार दृष्टव्य हैं- ''जो साहित्यकार मानव जीवन एवं समाज का संपूर्ण वास्तविक चित्र काल्पनिक संसार से न लेकर वास्तविक संसार से लेता है, उसे ही यथार्थवादी साहित्यकार कह सकते हैं। यथार्थवादी कलाकार अपनी प्रतिभा के बल पर बाह्य पदार्थों का यथातथ्य चित्र उपस्थित करता है। अतः इस प्रकार के चित्र प्रस्तुत करते समय वह अपनी भावुकता तथा अनुभूतियों का सहारा लेता है उनको बाधक नहीं होने देता।''[1] यह सही है कि यथार्थवादी साहित्यकार वस्तु-जगत् का अस्तित्व प्रमुख मानकर चलता है। रचनाकार वस्तुनिष्ठ दृष्टि अपनाकर एक प्रकार से समाज और वस्तुओं का सही रूप प्रस्तुत करने के लिए प्रतिबद्ध रहता है।

इस प्रकार यथार्थवाद का मूल स्वर समाज की करुणा एवं संवेदना को अभिव्यक्ति देना है। मानवी जीवन की मनोवृत्तियों को यथार्थवाद अनावृत्त करता है। साहित्य में यथार्थवाद का चित्रण के संदर्भ में विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने मत दिए हैं। यथार्थवाद को परिभाषित करने का प्रयास अनेक विद्वानों ने किया है।

3.1.3 यथार्थवाद की परिभाषाएँ -

साहित्य में यथार्थवाद आधुनिक काल की देन है। मानव जीवन के यथार्थ को आज का यथार्थवादी रचनाकार अपने साहित्य में अभिव्यक्त कर रहा है। साहित्य में यथार्थ

---

1. डॉ. त्रिभुवनसिंह - हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ - 44

के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने उसे परिभाषित करने का प्रयास किया है।

भारतीय विद्वानों ने यथार्थवाद को परिभाषित करते हुए अपने-अपने मत दिए। वे इस प्रकार हैं-

प्रेमचंद यथार्थ और आदर्श के संदर्भ में साम्यवादी दृष्टि रखते हैं। प्रेमचंद के अनुसार- ''वही उपन्यास उच्चकोटि के समझे जाते हैं जहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो, उसे आप आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कह सकते हैं। आदर्श सजीव बनाने के लिए यथार्थ का उपयोग होना चाहिए।''[1] प्रेमचंद समझते हैं कि कोरे यथार्थवाद के कारण ही मानव चरित्र पर से हमारा विश्वास उठ जाता है। हमें अपने चारों तरफ बुराई ही नजर आती है। अतः यथार्थ के साथ आदर्श का भी होना आवश्यक है।

पं. नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार- ''यथार्थवाद वस्तुओं की पृथक सत्ता का समर्थक है। वह व्यष्ठि की अपेक्षा समष्ठि की ओर अधिक उन्मुख रहता है। यथार्थवाद का सबंध प्रत्यक्ष वस्तु-जगत् से होता है।''[2]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं- ''यथार्थवादी शब्द बहुत गलतफहमी का शिकार बन गया है। साहित्य में यथार्थवाद का प्रयोग नए सिरे से होने लगा है। यह अंग्रेजी शब्द 'रियलिज्म' के तौर पर लिया गया है। यथार्थवाद का मूल सिद्धांत वस्तु को उसके यथार्थ रूप में चित्रित करना है। न तो उसका कल्पना के द्वारा विचित्र रंगों में अनुरंजित करना और न किसी धार्मिक या नैतिक आदर्श के लिए काँट-छाँटकर उपस्थित करना है।''[3]

यथार्थवाद मुख्यतः पाश्चात्य विचारधारा है। यूरोप की भूमि पर ही यथार्थवाद का जन्म हुआ और विकास भी। अतः अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने यथार्थवाद की परिभाषाएँ दी हैं। वे इस प्रकार हैं-

---

1. डॉ. बालकृष्ण गुप्त - हिंदी उपन्यास : सामाजिक संदर्भ, पृष्ठ - 207
2. डॉ. त्रिभुवनसिंह - हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ - 49
3. डॉ. बालकृष्ण गुप्त - हिंदी उपन्यास : सामाजिक संदर्भ, पृष्ठ - 208-09

पाश्चात्य विद्वान हेवर्ड फास्ट के अनुसार- ''यथार्थवाद वह साहित्यिक संश्लेषण है जो चुनाव तथा रचना के माध्यम से अपने वास्तविक विचारों को समुन्नत रूप में पाठकों के सम्मुख उपस्थित करता है।''[1]

एंगेल्स की धारणा है कि ''यथार्थवाद का आशय यह है कि लेखक विवरणों और ब्यौरों के सत्य प्रस्तुतीकरण के अलावा प्रतिनिधि पात्रों को प्रतिनिधि परिस्थितियों में सच्चाई के साथ चित्रित करें।''[2] उक्त कथन से स्पष्ट है कि रचनाकार अपनी कृति में सत्य का ब्यौरेवार विवरण देता है।

पाश्चात्य विद्वान जोला का कहना है- ''मानव का सामान्य तत्त्वों की भाँति अध्ययन करके उसकी प्रतिक्रिया नोट करो। मेरे लिए प्रकृतिवादी एवं शरीर-विज्ञान संबंधी क्रियाओं का विशेष महत्त्व है। मैं सिद्धांत निर्माण के स्थान पर इन्हीं नियमों का अनुगमन करना चाहता हूँ। मैं एक वैज्ञानिक की तरह तथ्यों और रहस्योद्घाटन करते समय वस्तुस्थिति के अभिज्ञान से संतुष्ठ हूँ।''[3] पाश्चात्य विद्वान जोला के अनुसार एक वैज्ञानिक की भाँति तथ्यों का रहस्योद्घाटन साहित्य में होना चाहिए।

अतः कहा जा सकता है कि सभी विद्वानों ने समाज में देखे हुए तथा अनुभूत सच्चाई का यथार्थ चित्रण पर बल दिया है, परंतु रचना में पूर्ण रूप से यथातथ्य यथार्थ को अभिव्यक्त करने से अतियथार्थवाद या नग्न यथार्थवाद की समस्या भी निर्माण हो सकती है। अतः साहित्यकार को चाहिए कि वह प्रसंगानुरूप कल्पना का भी आधार ले। कल्पना और यथार्थ के समन्वय से ही रचना का सौंदर्य एवं रोचकता बढ़ती है।

3.1.4 यथार्थवाद के भेद -

साहित्य में चित्रित विषयवस्तु में निहित सच्चाई के आधार पर यथार्थवाद के अनेक भेद किए जाते हैं। प्रत्येक रचना में यथार्थवाद के विभिन्न भेदों का प्रयोग किया हुआ दिखाई देता है। यथार्थवाद के भेदों में ऐतिहासिक, आदर्शोन्मुख, मनोवैज्ञानिक, समाजवादी, आलोचनात्मक, राजनीतिक, सामाजिक आदि प्रमुख माने जाते हैं। वे इस प्रकार हैं-

---

1. डॉ. त्रिभुवन सिंह - हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ - 46
2. शिवकुमार मिश्र - यथार्थवाद, पृष्ठ - 10
3. डॉ. त्रिभुवन सिंह - हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ - 46

1. ऐतिहासिक यथार्थवाद -

ऐतिहासिक यथार्थवाद के अंतर्गत तत्कालिन समाज के ऐसे चरित्रों की रचना साहित्यकार करता है, जिससे आनेवाले समाज को प्रेरणा मिले तथा उस परिवेश के दोष, दुर्बलताएँ भी बताता है। डॉ. सुरेश सिन्हा के अनुसार- "ऐतिहासिक यथार्थवाद तिथियों, नामों एवं घटनाओं की सत्यता के प्रति अधिक आग्रहशील नहीं रहता पर तत्कालिन सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन के यथार्थ चित्रण पर बल देता है।"[1] यह सही है कि ऐतिहासिक यथार्थवाद में तत्कालिन परिस्थिति को महत्त्व दिया जाता है।

2. आदर्शोन्मुख यथार्थवाद -

आदर्श और यथार्थ का समन्वित रूप ही आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कहा जाता है। रचनाकार किसी घटना या वस्तु का यथार्थ चित्रण करते समय आदर्श की भी प्रतिष्ठा करता है। डॉ. त्रिभुवन सिंह के अनुसार- "साहित्य में आदर्श जब तक यथार्थ के साथ सहायक रूप में आता है अथवा आदर्श के साथ यथार्थ का सामंजस्य हो जाता है तो उसका मानव जीवन में कुछ मूल्य ठहरता है, अन्यथा वह लेखक और पाठक के मानसिक व्यायाम से अधिक अपना कुछ अर्थ नहीं रखता।"[2] उक्त कथन से स्पष्ट है कि आदर्श और यथार्थ का समन्वित रूप समाज के लिए हितकारक सिद्ध होगा।

3. मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद -

मानव के अचेतन मन का यथातथ्य रहस्योद्घाटन मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद में किया जाता है। पाश्चात्य विद्वान फ्रायड, एडलर और युंग आदि ने साहित्य में मानव के अचेतन मन में दबी भावनाओं को प्रमुखता दी है। मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद मानव मन की जटिल एवं विषम ग्रंथियों को सुलझाने का कार्य करता है। हिंदी साहित्य में डॉ. देवराज, इलाचंद जोशी, अज्ञेय, जैनेंद्र आदि की रचनाओं में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

---

1. डॉ. सुरेश सिन्हा - हिंदी उपन्यास : उद्भव और विकास, पृष्ठ - 27
2. डॉ. त्रिभुवन सिंह - हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ - 543

4. समाजवादी यथार्थवाद -

समाजवादी यथार्थ बीसवीं शताब्दी की उपलब्धि है। पाश्चात्य विद्वान गोर्की ने सर्वप्रथम इसका नामाभिधान किया। मार्क्सवाद के समग्र क्रांति की उद्देश्यवादिता, आर्थिक समता, पूँजीवाद का विरोध, सामाजिक समग्रता और समाज मे साम्यवाद की स्थापना आदि समाजवादी यथार्थवाद की प्रवृत्तियाँ हैं। समाजवादी यथार्थ आशावादी होता है। समाजवादी यथार्थवाद ऐतिहासिक दृष्टि से समाज की ऱ्हासोन्मुख एवं विकासोन्मुख विशेषताओं का विवेचन करके उनका अध्ययन करता है।

5. आलोचनात्मक यथार्थवाद -

तथ्यों का निरपेक्ष एवं पूर्णतः चित्रण करते हुए समाज की विकृतियाँ, कुरूपता, विषमता आदि की आलोचना करना ही आलोचनात्मक यथार्थवाद कहा जाता है। रचनाकार एक आलोचक की भाँति तथ्यों की आलोचना करता है।

6. राजनीतिक यथार्थवाद -

राजनीति समाज का एक अभिन्न अंग है। राजनीतिक यथार्थवाद में राष्ट्रीय राजनीति की समस्याएँ इसमें राजनीति का विकृत स्वरूप, शोषक नीति, जनसामान्य पर उसका प्रभाव, स्वार्थी राजनेता तथा राजनीति में पिसता समाज आदि सभी का चित्रण राजनीतिक यथार्थवाद में दिखाई देता है। राजनीतिक यथार्थवाद में राजनीतिक परिवेश महत्त्वपूर्ण होता है। यशपाल, भीष्म साहनी, प्रेमचंद, रांगेय राघव आदि की रचनाओं में हमें राजनीतिक यथार्थवाद के दर्शन होते हैं।

7. सामाजिक यथार्थवाद -

साहित्य समाज का दर्पण है। समाज में घटित होनेवाली हर घटना साहित्य के माध्यम से साकार रूप धारण करती है। सामाजिक यथार्थवाद के संदर्भ में डॉ. त्रिभुवनसिंह के विचार दृष्टव्य हैं- ''समाज की वास्तविक अवस्था में किसी भी वस्तु का तद्वत चित्र उतार देना श्रेष्ठ साहित्य के लिए हानिकारक होता है। साहित्यिक चित्र कैमरे द्वारा लिया गया चित्र नहीं होता, बल्कि वह साहित्यकार की लेखनी द्वारा चित्रित किया गया ऐसा चित्र होता

है कि जिसमें साहित्यकार के अनुभव एवं कल्पना के सुंदर रंग ढले होते हैं। संक्षिप्त रूप में हम कह सकते हैं कि सामाजिक विषमताओं, भ्रष्टाचारों तथा वैयक्तिक स्वार्थ से आक्रांत, पीड़ित समाज की दयनीय परिस्थितियों को उसके वास्तविक रूप में समाज के सामने प्रस्तुत करना सामाजिक यथार्थवाद का प्रधान लक्ष्य है।''[1] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि सामाजिक यथार्थवाद में समाज की विभिन्न समस्याएँ, विषमता तथा अन्याय-अत्याचार से पीड़ित आम जनता का यथातथ्य चित्रण किया होता है।

6. अतियथार्थवाद -

अतियथार्थवाद प्रथम विश्वयुद्ध की विभीषिका का परिणाम है। हिंदी साहित्य में अतियथार्थवाद को ज्यादातर प्रोत्साहन नहीं मिल पाया। अति यथार्थवादी रचना में मानवीय विकृति, बीभत्सना के ऐसे चित्र उपस्थित किए हैं कि जिससे मानव विकृति का मात्र पुतला बन गया है।

अतियथार्थवाद के संदर्भ में डॉ. त्रिभुवनसिंह कहते हैं- ''अतियथार्थवादी लेखक अपनी इच्छाओं की पूर्ति प्रायः प्रस्तुत संसार की वस्तुओं में न ढूँढ़कर आकाश-कुसुमों की खोज में रहता है। सत्यता के नाम पर आज वास्तविकता के ऊपर पर्दा गिरा दिया गया है। इसी पर्दे को हटाकर उसके यथार्थ रूप को सामने लाना अतियथार्थवादी साहित्य अपना पवित्र कर्तव्य समझता है।''[2] उक्त कथन से स्पष्ट है कि अतियथार्थवादी साहित्यकार किसी लाग-लपेट के बिना जैसा-है-वैसा चित्र अपने साहित्य में अंकित करता है। विद्रोह और स्वतंत्रता के नाम पर वे सभी पुरानी मान्यताओं और मूल्यों का विनाश कर दिन-प्रतिदिन के जीवन में ही नई मान्यताओं की खोज करते हुए उसकी स्थापना करते हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि साहित्य में यथार्थ होना आवश्यक है, परंतु केवल यथार्थवाद की ही भरमार होगी तो रचना अवास्तव लगेगी। अतः कल्पना या आदर्श एवं यथार्थ का समन्वित रूप कृति में होना चाहिए। साहित्य विभिन्न यथार्थवादी धाराओं को लेकर लिखा जाना यह आज के युग की माँग रही है।

---

1. डॉ. त्रिभुवनसिंह - हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद, पृष्ठ - 231
2. वही, पृष्ठ - 61

आधुनिक काल में सदियों से उच्चवर्गियों द्वारा शोषित दलित समाज का यथार्थ चित्रण हिंदी साहित्य में किया जा रहा है। सामाजिक स्तर से पिछड़ा हुआ दलित समाज अज्ञान एवं अंधविश्वास के सागर में डूब गया था। ऐसे समाज को प्रतिष्ठित करने का प्रयास साहित्यकारों ने किया है। जाति के आधार पर किए गए विभाजन से दलित समाज की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य एवं शूद्र इन वर्गों से सबसे निम्न स्तर शूद्र माना जाता था। आगे दलित शब्द के स्वरूप व अर्थ की चर्चा करते हुए दलित शब्द की विद्वानों द्वारा दी हुई परिभाषाओं का विचार किया गया है।

3.2 दलित : अर्थ एवं परिभाषा -

प्राचीन भारतीय समाज में वर्णव्यवस्था का प्रभाव रहा। समाज का विभाजन चार वर्गों में हुआ। ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य एवं शूद्र इन चार वर्गों के कर्तव्य-अधिकार 'मनुस्मृति' ग्रंथ में निर्धारित किए हुए थे। इसी वर्ण-व्यवस्था के आधार पर समाज विभिन्न जाति-उपजातियों में विभाजित हुआ। प्राचीन भारतीय धर्मग्रंथ 'मनुस्मृति' तथा 'नारदस्मृति' में इस वर्णव्यवस्था का स्वरूप इस प्रकार चित्रित किया गया-

"अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा। दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत॥
प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च। बियेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः
पशूना रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च। वणिकपथं कुसीदं च वैशस्य कृषिमेव च।
एकमेव तु शुद्रस्य प्रभुः कर्मसमादिशत। एतेषामेव वर्णांना शुश्रूषामनसुयया
ऊर्ध्व नाभेर्मेध्यतरः पुरुषः परिकीर्तितः तस्मान्मेध्यतमं त्वस्य मुखमुक्तं स्वयंभुवा।"[1]

अर्थात् अध्ययन-अध्यापन, दान लेना-देना यह ब्राह्मणों का कर्तव्य है। प्रजारक्षण एवं अनासक्त वृत्ति से क्षत्रीयों का कार्य तथा पशूपालन, दान, व्यापार, साहूकारी, खेती आदि काम वैश्यों का है। इन तीन वर्गों की सेवा मन में हीनता न रखते हुए करना शूद्रों का काम है। इस प्रकार से हर एक वर्ण का कार्य मनुस्मृति में दिया गया था।

आगे चलकर समाज में दासप्रथा शुरू हुई। दासप्रथा से शूद्रों का जीवन नरक बन गया। उच्चवर्गीय लोग, शूद्रों को खरीदकर दास, गुलाम बनाने लगे। दासप्रथा में शूद्र

---

1. वे. शा. सं. पंडित रामचंद्रशास्त्री अंबादास जोशी - श्री सार्थ मनुस्मृति, प्रथम अध्याय, पृष्ठ - 11

लोग जानवर से भी बदतर जिंदगी जीने के लिए विवश थे। दासप्रथा नष्ट होने के बाद शूद्र समाज को ही अस्पृश्य समझा जाने लगा। 'अस्पृश्य' का अर्थ जो छूने के भी लायक नहीं ऐसा समाज अस्पृश्य कहा जाता था। इन लोगों की परछाई से भी उच्चवर्गीय परहेज रहते थे। शूद्रों के केवल स्पर्श से ही नहीं बल्कि उनकी छाया से भी बचकर सवर्ण जाते थे। इस अतिरेकी पद्धति का पालन करते हुए दलितों को अनेक यातनाएँ-पिड़ाएँ झेलनी पड़ती थी। किसी उच्चवर्गियों पर छाया न पड़े इसलिए अस्पृश्य दलितों को सुबह और शाम को गाँव में घूमने की इजाजत नहीं थी। दोपहर के समय ही दलित या शूद्र लोग घर से बाहर निकल सकते थे। इन लोगों को गली से गुजरते हुए गले में एक लोटा तथा कमर में झाडू या पेड़ की टहनी बाँधनी पड़ती थी। झाडू या टहनी से उनकी परछाई को मिटाया जाता था। इस प्रकार से शूद्र समझी जानेवाली जाति को उच्चवर्गीय अपनी संपत्ति मानते थे।

अंग्रेज शासन काल से शिक्षा के माध्यम से विभिन्न समाज सुधारकों ने निम्न समझे जानेवाले समाज में जन-जागरण करने का प्रयास किया। शूद्रों को दलित यह संज्ञा दी गई। दलितों पर हो रहे अन्याय-अत्याचार को रोकने का प्रयास किया गया, परंतु पुराणमतवादी समाज में दलितों का सम्मान की जिंदगी जीने का अधिकार नहीं मिला है। भारत को आजादी मिलने के बाद भी अशिक्षा और अंधविश्वास का लाभ उठाकर उच्चवर्गीय दलितों को लूटते रहते हैं। केवल आरक्षण नीति से दलितों की स्थिति नहीं सुधरेगी बल्कि दलितों की स्थिति सुधरने के लिए उच्चवर्गियों की मानसिकता में बदलाव लाना जरूरी है।

उच्चवर्गीय लोगों की मानसिकता को बदलने का प्रयास साहित्य के माध्यम से हुआ है। आज साहित्य में दलित समाज का यथार्थ चित्रण हो रहा है। साहित्य के क्षेत्र में दलित-विमर्श जोरों पर है। दलितों के वास्तविक यथार्थ को वाणी देने का कार्य साहित्य के माध्यम से हुआ है। लेखक जगदीशचंद्र ने 'धरती धन न अपना' उपन्यास में दलित समाज के यथार्थ को चित्रित किया है। विवेच्य उपन्यास का दलित समाज के यथार्थ के अध्ययन से पहले 'दलित' शब्द का अर्थ एवं परिभाषाएँ देखना आवश्यक है।

3.2.1 दलित शब्द का कोशगत अर्थ -

'दलित' शब्द को लेकर साहित्य के क्षेत्र में काफी चर्चा चल रही है। 'दलित' और 'दलित साहित्य' किसे कहा जाए ? इस संदर्भ में भी अनेक मत-मतांतर दिखाई देते हैं। विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने तरीके से 'दलित' तथा 'दलित साहित्य' के बारे में मत व्यक्त किए। दलित साहित्य के अंतर्गत दलित और गैरदलितों द्वारा लिखा गया साहित्य यह दो मतप्रवाह चल पड़े हैं।

अतः 'दलित' शब्द के विभिन्न शब्द कोशों के अंतर्गत भिन्न-भिन्न अर्थ दिए हैं। वे इस प्रकार हैं-

'दलित' - ''मसला, रौंदा या कुचला हुआ।''[1]

'दलित' - ''विदीर्ण, कुचला हुआ।''[2]

'दलित' - ''जो दबाया गया हो अथवा जिसे पनपने या बढ़ने न दिया गया हो।''[3]

उपर्युक्त शब्दकोशीय अर्थ से यह कहा जा सकता है कि सदियों से उच्चवर्गियों द्वारा दबे-कुचले, अन्याय-अत्याचार से पीड़ित निम्नवर्गीय लोग 'दलित' संज्ञा के अंतर्गत आते हैं। 'दलित' शब्द से पूरे 'दलित वर्ग' या विशिष्ठ समाज का बोध होता है। 'हिंदी साहित्य कोश भाग-1' में धीरेंद्र वर्मा ने 'दलित वर्ग' का अर्थ इस प्रकार दिया है- ''यह समाज का निम्नतम वर्ग होता है, जिसको विशिष्ठ संज्ञा आर्थिक व्यवस्थाओं के अनुरूप ही प्राप्त होती है। उदाहरणार्थ- दासप्रथा में दास, सामंतवादी व्यवस्था में किसान, पूँजीवादी व्यवस्था में मजदूर समाज का 'दलित वर्ग' कहलाता है।''[4] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि दलित वर्ग जो आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ हो। यहाँ व्यक्ति की आर्थिक व्यवस्था को महत्त्वपूर्ण माना है।

'दलित वर्ग' के संदर्भ में रामचंद्र वर्मा के विचार दृष्टव्य हैं- ''समाज का वह वर्ग जो सब से नीचा माना गया हो या दुःखी और दरिद्र हो और जिसे उच्च वर्ग के लोग ऊपर

---

1. श्री. नवलर्ज - नालंदा विशाल शब्दसागर, पृष्ठ - 568
2. सं. पं. रामचंद्र पाठक-भार्गव, आदर्श हिंदी शब्दकोश, पृष्ठ - 285
3. सं. रामचंद्र वर्मा - मानक हिंदी शब्दकोश, पृष्ठ - 527
4. धीरेंद्र वर्मा - हिंदी साहित्यकोश, भाग-1, पृष्ठ - 365

उठने न देते हों। जैसे भारत की छोटी या अछूत मानी जानेवाली जातियों के वर्ग।''[1] यह सही है कि प्राचीन भारतीय समाज ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्गों में विभाजित था। अतः समाज का सबसे छोटा एवं नीच वर्ग के रूप में शूद्र वर्ग को देखते थे। ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य इन तीन वर्गों की सेवा तथा समाज में हीन-बूरे काम शूद्रों को करने पड़ते थे। शिक्षा से कोसों दूर रखकर उच्चवर्गीय लोगों ने शूद्रों को ऊपर उठने नहीं दिया। सदियों से शूद्रों को अज्ञान एवं अंधविश्वास की खाई में ढकेल दिया था।

3.2.2 'दलित' शब्द की परिभाषा -

'दलित' शब्द को परिभाषित करने का प्रयास अनेक विद्वानों ने अपनी-अपनी ओर से किया है। वस्तुतः दलित शब्द दो अर्थों में ग्रहण किया जाता है। संकुचित अर्थ के अंतर्गत 'दलित' शब्द का अर्थ 'अनुसूचित जाति' से लिया जाता है। व्यापक अर्थ में 'दलित' शब्द 'आर्थिक दृष्टि से पीड़ित' निम्न वर्ग के लिए प्रयुक्त किया जाता है। भारतीय संविधान में दलित वर्ग का समावेश 'शेड्युल्ड कास्ट' (Scheduled Cast) में किया गया है। 'दलित' शब्द के अर्थ को लेकर विद्वानों ने अनेक परिभाषाएँ दी। अतः यह परिभाषाएँ 'दलित' शब्द के संकुचित एवं व्यापक अर्थ को दर्शाती हैं।

'दलित' शब्द का संकुचित अर्थ -

'दलित' शब्द का संकुचित या सीमित अर्थ की दृष्टि से देखनेवाले विद्वानों का कहना है कि अस्पृश्य या हरिजन, आदिवासी ही दलित है, जिन्हें युगों से उच्चवर्गीयों ने पैरों तले कुचला है। दलितों का स्पर्श तक निषिद्ध माना जाता था। इस संदर्भ में मराठी भाषा के लेखक प्रा. केशव मेश्राम ने एक साहित्य संमेलन में 'दलित' शब्द के संदर्भ में अपना मत दिया था। प्रा. केशव मेश्राम के अनुसार- ''हजारो वर्ष ज्यांच्यावर अन्याय झाला अशा अस्पृश्यांना दलित म्हंटले पाहिजे।''[2] (हजारों बरस जिनपर अन्याय हुआ ऐसे अस्पृश्यों को 'दलित' कहना चाहिए।) स्पष्ट है कि दलित समाज सदियों से उच्चवर्गीयों द्वारा शोषित-पीड़ित रहा है, जो समाज अस्पृश्य मानकर बहिष्कृत किया गया उसे ही 'दलित' कहा गया।

---

1. रामचंद्र वर्मा - प्रामाणिक हिंदी शब्दकोश, पृष्ठ - 35
2. सं. प्रा. गंगाधर पानतावणे - अस्मितादर्श त्रैमासिक, पृष्ठ - 184

SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

अंग्रेजी में 'डिप्रेस्ड क्लासेस' (Depressed Classes) यह शब्द प्रयोग किया जाता है, वह अस्पृश्य जातियों के अर्थ में होता है। अंग्रेजी के 'डिप्रेस्ड क्लास' के लिए 'मराठी' भाषा में 'दलित' कहा गया है। 'डिप्रेस्ड क्लास' के अंतर्गत ऐसा वर्ग आता है जिसे कुचला-दबाया गया है और जिसका स्पर्श तक दूषित माना है। यह अर्थ अस्पृश्य समझी जानेवाली जातियों के संदर्भ में यथार्थ कहा जाता है।

दलितों पर हो रहे अन्याय-अत्याचार, शोषण के विरोध में अनेक समाज सुधारकों ने प्रयत्न किए। दलितोद्धारक महामानव डॉ. बाबासाहब आंबेडकर ने दलितों को समाज मे एक मानव के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। उन्होने 'Who were Shudras' (शूद्र कौन थे) नामक ग्रंथ में सदियों से पद्दलित समाज को न्याय देने का कार्य किया। 'Who were Shudras' ग्रंथ की प्रस्तावना में डॉ. आंबेडकर लिखते हैं- "इस किताब में मैने अस्पृश्य वर्ग के अर्थबोध के लिए डिप्रेस्ड क्लासेस, शेड्युल्ड कास्टस, हरिजन और गुलाम (दास) जैसा वर्ग ऐसी मिश्रण पद्धति से अलग-अलग नाम प्रयुक्त किए हैं, ऐसा पाठकों को नजर आएगा। क्योंकि अगर अस्पृश्य समझी जानेवाली जाति के लिए एक नाम दिया गया होता तो वह एक स्थिति में उचित तो दूसरी स्थिति में अनुचित हो गया होता।"[1] अस्पृश्य वर्ग के लिए अंग्रेजी में 'Untouchable' भी कहते हैं। इसके अंतर्गत सभी अस्पृश्य जाति या दलित समाविष्ठ होते हैं।

'दलित' शब्द का व्यापक अर्थ -

'दलित' शब्द के व्यापक अर्थ से यह स्पष्ट होता है कि दलितों की कोई विशिष्ट जाति नहीं है। समाज में विशिष्ठ जाति विशेष को महत्त्व न होकर मनुष्य की पतितावस्था, अन्याय-अत्याचार, लाचारी, शोषण को देखा जाता है। जहाँ उच्चवर्गीय निम्नवर्गियों को अपना दास समझकर अन्याय-अत्याचार तथा शोषण करते हैं। "स्वतंत्रता, समता और प्रगति से अनभिज्ञ रहकर जो अपने मालिक की प्रामाणिक दासता निभाता है और जिसके जीवन में ज्ञान या प्रकाश के अभाव में अज्ञान या अंधेरा ही अंधेरा छाया हुआ रहता

---

1. डॉ. बाबासाहब आंबेडकर - Who wre Shudras ?, प्रस्तावना

है। ऐसा व्यक्ति 'दलित' है चाहे उसकी जाति ब्राह्मण क्यों न हो।''[1] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि अज्ञान एवं अंधविश्वासी व्यक्ति जो अपने अधिकारों से वंचित रहा वही दलित कहा जाएगा। सदियों से उसे एक दास के रूप में ही देखा गया।

आधुनिक हिंदी साहित्य के दलित उपन्यासकार ओमप्रकाश वाल्मीकि 'दलित' शब्द के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं- ''डॉ. भीमराव आंबेडकर ने हमें 'दलित' शब्द दिया। इसका मतलब सभी जातियाँ एक हो गई, न कोई मोची, न चमार, न भंगी रह गया। दलित शब्द के अंदर ये सभी आ गए।''[2] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि समाज में निम्न जातियाँ 'दलित' शब्द के अंतर्गत आती हैं।

नागपुर में आयोजित दलित साहित्य संमेलन में 'दलित' शब्द के व्यापक स्वरूप एवं अर्थ पर विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने विचार व्यक्त किए। संमेलनाध्यक्ष डॉ. म. ना. वानखेडे ने 'दलित' शब्द की व्याप्ति स्पष्ट करते हुए कहा- ''दलित संज्ञा की परिभाषा केवल बौद्ध या पिछड़े हुए वर्गीय जन नहीं, तो जो-जो शोषित श्रमजीवी हैं, वे सब दलित संज्ञा में समाविष्ठ होते हैं।''[3] उक्त कथन से 'दलित' शब्द का व्यापक रूप स्पष्ट होता है। 'दलित' संज्ञा में केवल अस्पृश्य या हरिजन, बौद्ध न आते हुए जो जो सामान्य वर्ग सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजकीय दृष्टि से पिछड़ा हुआ है, वे सभी 'दलित' कहे जाते हैं।

विशिष्ठ जाति को महत्त्व न देकर 'दलित' शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए डॉ. सदा कन्हाडे ने कहा- ''आर्थिक एवं सामाजिक दोनों दृष्टियों से मिलाकर एक सर्वसमावेशक दलित वर्ग मान लिया जा सकता है। उसमें कर्मचारी, खेती पर खपनेवाले मजदूर, जीवनयापन के लिए कष्ठ उठानेवाले तथा अस्पृश्य ही आएँगे। शोषित ही 'दलित' हैं।''[4] यहाँ समाज के शोषित वर्ग को 'दलित' माना गया है।

---

1. डॉ. बलवंत साधू जाधव - प्रेमचंद के साहित्य में दलित चेतना, पृष्ठ - 23
2. रतनकुमार पांडेय - अनभै (पत्रिका), पृष्ठ - 75
3. डॉ. म. ना. वानखेडे - अध्यक्षीय भाषण : दलित साहित्य संमेलन- स्मरणिका, पृष्ठ - 67
4. डॉ. सदा कन्हाडे - दलित साहित्याच्या निमित्ताने : मुंबई सत्यकथा, पृष्ठ - 23

शरणकुमार लिंबाले के दलित शब्द का व्यापक अर्थ के संदर्भ में विचार दृष्टव्य हैं- ''दलित अर्थात् केवल हरिजन और नवबौद्ध ही नहीं, बल्कि गाँव की सीमा से बाहर रहनेवाली सभी अछूत जातियाँ, आदिवासी, भूमिहीन खेतमजदूर, श्रमिक, दुःखी जनता, भटकी-बहिष्कृत जाति इन सभी का 'दलित' शब्द की व्याख्या में समावेश होता है। 'दलित' शब्द की व्याख्या केवल अछूत जाति का उल्लेख करने से नहीं होगी इसमें आर्थिक तौर पर पिछड़े हुए लोगों का भी समावेश करना चाहिए।''[1] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि दलित शब्द से केवल अछूत जाति का ही बोध नहीं होता, बल्कि आर्थिक दृष्टि से हीन समाज भी दलित कहा जाएगा।

मराठी भाषा के प्रसिद्ध साहित्यकार शंकरराव खरात ने 'दलित' शब्द को परिभाषित करते हुए- ''सामाजिक जाणिवेच्या दृष्टिकोणातून 'दलित' शब्दाची व्याप्ती पहावयाची झाल्यास 'दलित' ह्या शब्दप्रयोगातून हिंदू धर्माने व संस्कृतीने अस्पृश्य या जातींचा समावेश होतोच पण याशिवाय पूर्वीच्या गुन्हेगार जमाती- म्हणजेच आजच्या विमुक्त जमाती तसेच जंगलात, दऱ्या-खोऱ्यात मानवी संस्कृतीपासून दूर रानटी पशू-पक्ष्यांप्रमाणे ठेवलेल्या आदिवासी जमाती याही दलितातच येतात.''[2] ('दलित' इस शब्दप्रयोग में हिंदू धर्म और संस्कृति से अस्पृश्य जाति का समावेश होता ही है, परंतु इसके सिवाय पुराने जमाने की गुनहगार जाति का याने आज की विमुक्त जातियाँ और जंगलों में मानवी संस्कृति से दूर असभ्य पशु-पक्षी की तरह रहनेवाली जनजाति- बंजारा जातियाँ भी दलितों में आती हैं।) उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि विमुक्त जन-जातियाँ, आदिवासी लोग दलित कहे जा सकते हैं।

दलित लेखक नामदेव ढसाळ कहते हैं- ''अनुसूचित जाति-जमाति, बौद्ध कष्टकरी जनता, कामगार, भूमिहीन शेतमजूर, गरीब शेतकरी, भटक्या जमाति आदिवासी आदि दलित के अंतर्गत आते हैं।''[3] आर्थिक दृष्टि से हीन-दिन जन-जातियों को दलित कहा गया है।

---

1. सं. राजेंद्र यादव - 'हंस' मासिक, जनवरी-1997, पृष्ठ - 53
2. शंकरराव खरात - दलित वाङ्मय : प्रेरणा व प्रवृत्ति, पृष्ठ - 16
3. वही, पृष्ठ - 24

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों ने 'दलित' शब्द का संकुचित एवं व्यापक अर्थ बताने का प्रयास किया है। भारतीय संविधान में 'अनुसूचित जाति' यह शब्द 'दलित' के लिए प्रयुक्त किया है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि 'दलित' शब्द का तात्पर्य समाज के उस पद्दलित वर्ग से है, जिसे सदियों से 'अछूत' कहकर उपेक्षित किया गया। हर प्रकार से उसका शोषण किया गया, उसे कोई अधिकार नहीं दिए गए, शिक्षा से वह वंचित रहा और उसकी इच्छाशक्ति को पनपने नहीं दिया गया। अतः यह तर्कसंगत लगता है कि 'दलित' शब्द केवल विशिष्ठ जाति तक सीमित न रहकर आर्थिक दृष्टि से हीन समाज के लोगों को भी 'दलित' कहा जाएगा।

3.3 'धरती धन न अपना' उपन्यास में चित्रित दलित समाज का यथार्थ -

भारतीय समाज में दलित समाज की स्थिति अत्यंत दयनीय एवं सोचनीय है। सदियों से उच्चवर्गों द्वारा दबा-कुचला गया दलित समाज अज्ञान एवं अंधविश्वास की खाई में डूब गया था। दलित लोग समाज में न ही प्रतिष्ठित थे और न ही अपने अधिकारों के प्रति सचेत। सदियों से उच्चवर्गीयों का बोझ ढोने का काम दलित समाज ने किया हुआ दिखाई देता है।

दलित समाज की प्रगति के लिए आधुनिक काल में विभिन्न प्रयास किए गए। अंग्रेजी शिक्षा एवं मुद्रणकला स्वातंत्र्य के कारण भारतीय जनमानस में चेतना की लहर दौड़ गई। अनेक समाज सुधारक, विचारवंतों ने समाज सुधार को महत्त्व देकर छुआछूत, सतीप्रथा, बालविवाह, दासप्रथा आदि का विरोध किया। दलित समाज को प्रतिष्ठित करने का कार्य महाराष्ट्र में फुले, शाहू, आंबेडकर जैसे महामानवों ने किया। डॉ. बाबासाहब आंबेडकर ने दलितोद्धार अपने जीवन का लक्ष्य माना। उन्होंने दलित समाज को सामाजिक पटल पर लाने का महत्त्वपूर्ण प्रयास किया। उसी की बदौलत आज दलित समाज शिक्षित होकर आरक्षण तथा रोजगार एवं स्वरोजगार योजनाओं का लाभ उठा रहा है। व्यक्ति के जाति को महत्त्व न होकर कृतित्व पर बल दिया जा रहा है।

एक ओर दलितों में जागृति हुई, परंतु ग्रामीण क्षेत्रों में इतनी बड़ी मात्रा में दलित समाज की प्रगति नहीं हुई। आज भी देहातों में जमींदारी प्रथा कायम रहने से दलित समाज अन्याय-अत्याचार की चक्की में पिसता हुआ दिखाई देता है। अज्ञान और अंधविश्वास के कारण दलित समाज का पूँजीपति वर्ग सत्ता एवं पैसों के बल पर शोषण करता है। स्वातंत्र्योत्तर काल में भी इनकी परिस्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया। विभिन्न समस्याओं से पीड़ित दलित समाज अपने अस्तित्व के लिए झगड़ रहा है। आधुनिक हिंदी साहित्य में अँचलों में जी रहे दलित समाज की यथार्थ तस्वीर अपने साहित्य में अंकित करते हुए फिर से एक बार समाज को दलित-विमर्श पर सोचने के लिए विवेश किया है। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक समस्याओं से जूझता दलित समाज आज भी उपेक्षित रहा है।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में लेखक जगदीशंचद्र ने पंजाब प्रांत के एक पिछड़ा हुआ गाँव घोड़ेवाहा के दलितों का यथार्थ अंकन किया है। सदियों से दबे-कुचले हुए घोड़ेवाहा गाँव के चमार अन्याय एवं अत्याचार से पीड़ित हैं। जाति के बंधन एवं आर्थिक विपन्नता का लाभ उठाकर जमींदार, चौधरी लोग दलितों का शोषण करते हैं। अज्ञान एवं अंधविश्वासी दलित समाज अपने पूर्व जन्म के कर्म कहकर अत्याचार सहता है। दलित युवक काली दलितों में चेतना जगाने का प्रयास करता है, परंतु वह भी असफल होकर पूँजीपतियों से मेल-जोल करता है।

आलोच्य उपन्यास में लेखक जगदीशचंद्र ने दलित समाज के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक यथार्थ का चित्रण किया है। डॉ. चमनलाल लिखते हैं- ''इस बहुचर्चित उपन्यास में जगदीशचंद्र ने जीवन के ऐसे पक्षों को छुआ है, जो अब तक अछूते थे। दलित वर्गों के जीवन को लेकर बहुत-से उपन्यासों की रचना हुई है, किंतु संभवतः 'धरती धन न अपना' हिंदी का पहला ऐसा उपन्यास है जिसमें जाति व्यवस्था एवं आर्थिक शोषण के उत्पीड़न के भयंकर रूप से शिकार 'चमारों' के जीवन को आधार बनाया गया है।''[1] यह सही है कि प्रस्तुत उपन्यास में चौधरी, जमींदार दलितों को अपनी संपत्ति मानते

---

1. सं. तरसेम गुजराल एवं बिनोद शाही - जगदीशचंद्र : एक रचनात्मक यात्रा, पृष्ठ - 149

थे। अतः दलितों पर हो रहे अन्याय-अत्याचार का यथावत चित्रण 'धरती धन न अपना' उपन्यास में लेखक जगदीशचंद्र ने किया है।

3.3.1 सामाजिक स्थिति का यथार्थ -

साहित्य और समाज का संबंध इतना घनिष्ठ है कि दोनों को विभाजित नहीं किया जा सकता। समाज का प्रतिबिंब साहित्य में दिखाई देता है। साहित्यकार समाज में रहते हुए विभिन्न सामाजिक उतार-चढ़ाव, जनजीवन आदि का यथार्थ अंकन अपने साहित्य में करता है। रचनाकार अपनी रचना में इस प्रकार का अंकन करता है, जो उसने अपनी आँखों से देखा तथा अनुभूत किया हो। सामाजिक यथार्थ में समाज की यथार्थता को प्रमुख स्थान दिया जाता है तथा उसमें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता भी निहित होती है।

रचनाकार अपनी रचना में केवल समाज की फोटोग्राफी पेश नहीं करता बल्कि अपने समय को वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि स्थिति का अंकन करते हुए व्यक्ति और समाज का संबंध स्पष्ट करता है। इस संदर्भ में शशि शर्मा लिखते हैं- ''हम समाज में रहते हैं, समाज के विभिन्न क्रिया-कलाप में योगदान देते हैं। किसी भी रूप में अपने को समाज से अलग नहीं कर सकते। अपने भाव, विचार, कल्पनाएँ सब कुछ बाह्य यथार्थ से ही ग्रहण करते हैं। इसलिए हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम अपने सामाजिक दायित्व का निर्वाह उचित ढंग से करें, अपने अनुभवों को गलत रूप में पेश न करे।''[1] यह सही है कि साहित्यकार को चाहिए कि वह पूरी निष्ठा से समाज का यथार्थ अंकन करे। अपनी अनुभूति के अतिरिक्त लाग-लपेट न करें। तभी रचना की वास्तविकता पर प्रकाश डाला जा सकता है।

अतः कहा जा सकता है कि सामाजिक यथार्थ के अंतर्गत तत्कालिन परिस्थितियों का जैसा-का-वैसा चित्रण होना आवश्यक है। इसमें रचनाकार के अनुभूति की अभिव्यक्ति महत्त्वपूर्ण मानी जाती है। साहित्य में किसी एक वर्ग को लेकर उसकी समस्याओं तथा समाज-जीवन की अभिव्यक्ति होती है। विशिष्ठ वर्ग का समाज-जीवन, चरितार्थ के साधन, अन्याय-अत्याचार से पीड़ित जनता का यथावत अंकन सामाजिक यथार्थ

---

1. शशि शर्मा एवं प्रवीण शर्मा - मुक्तिबोध कविता में यथार्थबोध, पृष्ठ - 4

में आवश्यक है। आधुनिक साहित्य में रचनाकारों ने ज्यादातर सामाजिक यथार्थ को महत्त्व दिया हुआ नजर आता है। एक सामाजिक कर्तव्य तथा जनआंदोलन के रूप में यह साहित्य देखा जाता है।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में लेखक जगदीशचंद्र ने पंजाब प्रांत के घोड़ेवाहा नामक गाँव के दलितों का यथावत चित्रण किया है। सदियों से दलित समाज की चेतना हर ली गई है। अज्ञान और अंधविश्वास में डूबा हुआ दलित वर्ग अन्याय-अत्याचार से पीड़ित है। गाँव के जमींदार, चौधरी अज्ञानी दलितों पर अपना रोब जताना चाहते हैं। वे दलितों को अपनी संपत्ति मानते हैं। समाज के पूँजीपति वर्ग से दलितों का हर प्रकार से शोषण किया जाता है। अर्थाभाव के कारण दलित शोषण के खिलाफ आवाज नहीं उठा पाते।

दलित युवक काली छह साल तक शहर में रहा है। शहरों में लोग अपने अधिकारों के लिए किस प्रकार झगड़ते हैं, यह काली ने देखा है। अतः वह अपने गाँव आकर घोड़वाहा गाँव के दलितों में राजनीतिक चेतना जगाने का प्रयास करता है। काली दलित समाज के परिवर्तनवादी विचारों का प्रतीक है। लेखक जगदीशचंद्र ने दलितों के सामाजिक यथार्थ का अंकन 'धरती धन न अपना' उपन्यास में बखूबी से किया है। प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित दलित समाज-जीवन के सामाजिक यथार्थ को निम्न पहलुओं से अध्ययन किया गया है-

3.3.1.1 दलित समाज का जीवन -

वर्णाधिष्ठित भारतीय समाज में शूद्र अर्थात् दलित समाज जीवन अत्यंत दयनीय था। समाज के अत्यंत गलिच्छ एवं बुरे काम दलितों को करने पड़ते थे। जिसके कारण दलितों को समाज में कोई भी प्रतिष्ठा नहीं थी। उच्चवर्गीयों के पैरों तले कुचला गया दलित समाज अपनी प्रगति नहीं कर सका। अज्ञान एंव अंधविश्वास के कारण अपने पुश्तों से चली आई परंपरा, रूढ़ियाँ, व्यवसाय आदि को दलित चिपके रहे। गाँव के जमींदार, चौधरियों को खेती या हवेली में काम करना ही दलितों के जीवन में लिखा था।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में लेखक जगदीशचंद्र ने घोड़ेवाहा गाँव के चमारों के समाज जीवन का अंकन किया है। गाँव से थोड़ी दूरी पर चमारों की बस्ती थी।

चमारों को न ही अपने मल्कियन की रहने के लिए जमीन थी और न ही जोतने के लिए जमीन थी। चमारों में किसी का पक्का मकान नहीं था। दलित युवक काली अपना पक्का मकान बनाना चाहता है। मकान के लिए बुनियाद की खुदाई के समय छज्जू शाह काली को सच्चाई से अवगत कराते हुए कहता है कि "कालीदास, जिस जमीन की तुम बात कर रहे हो वह जमीन भी तुम्हारी नहीं है। वह शामलात (गाँव के जमींदारों की साँझी जमीन) जमीन है। जब तक तू या तेरे वारिस इस गाँव में रहेंगे, जमीन का वह टुकड़ा रिहायश के लिए तुम्हारा है। बाद में उसका मालिक गाँव होगा। वह तेरी मालकियती जमीन नहीं है, मौरूसी जमीन है।"[1] स्पष्ट है कि दलितों को जमीन न होने का कारण चौधरी, जमींदार की हवेलियों तथा खेती में खपना पड़ता है।

मजदूरी, बेगार उठाना आदि से दलित समाज अपना तथा अपने परिवार का पेट पालते थे। चमारों के दैनिक कामकाज के संदर्भ में लेखक जगदीशचंद्र लिखते हैं- "चमादड़ी की स्त्रियाँ और मुटियारे सिरों पर टोकरे उठाए हुए चौधरियों के घरों और हवेलियों से कूड़ा और गोबर उठाने के लिए घरों से निकल पड़ी थी। चमादड़ी के मर्द गज-गज के साफे बाँधे और कमर तक नीची कुडतियाँ पहने हाथों में दरातियाँ या खुर्पे लिए खेतों की ओर जा रहे थे।"[2] स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्र में दलित लोगों को उच्चवर्गीयों पर अवलंबित रहना पड़ता है। दलित स्त्रियाँ चौधरी, जमींदारों की हवेलियों में गोबर उठाना, बर्तन माँजना, झाड़ू लगाना जैसे छोटे-मोटे काम करके गुजारा करती थी। खाली समय में चमादड़ी के मर्द शीशम के पेडों के नीचे अपने ढोर-डंगर बाँधते थे और स्वयं पीपल की घनी छाँव में ताश खेलते रहते थे।

चमार जाति के अतिरिक्त बाजीगर, काश्तकार जैसी जातियाँ अलग-अलग बस्ती बनाकर रहती थी। "उनके कोठे बाकी गाँव से अलग-अलग थे क्योंकि वे बिल्ली, लोमड़ी और गीदड़ तक का माँस खा लेते थे। यूँ तो गाँव का प्रत्येक व्यक्ति उनसे परहेज करता था, पर पंडित संतराम तो इनकी परछाई से भी दूर रहता था। लेकिन गाँववालों ने उन्हें

---

1. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 55
2. वही, पृष्ठ - 40

इसलिए बसने की आज्ञा दे रखी थी क्योंकि वे मिट्टी के खिलौने बनाने और कलाबाजियाँ डालने के अतिरिक्त सिरकियाँ और तन्द भी बनाते थे।''[1] उक्त कथन से कहा जा सकता है कि समाज में विभिन्न जातियाँ अपना-अपना काम करते हुए चरितार्थ करती थी। अशिक्षा एवं अंधविश्वास के कारण यह सभी जातियाँ समाज के अन्य वर्गों से पिछड़ चुकी थी।

अभावभरी जिंदगी जी रहे दलितों की आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय थी। केवल मजदूरी करके चमार जीवनयापन करते थे। इसके अतिरिक्त अन्य रोजगार उपलब्ध न होने से दलित युवक शहरों की ओर रोजगार की खोज में चल देते थे। धर्म-जाति का प्राबल्य इतना था कि गाँव के उच्चवर्गीय दलितों से परहेज रहते थे। चौधरी लोग दलित चमारों को अपनी संपत्ति समझते थे। अतः तीन दिन बाढ़ के पानी से हुआ शगाफ भरने के काम का दाम न देते हुए चौधरी लोग दलितों से मुफ्त में काम करवाना चाहते हैं, परंतु दलित युवक काली के नेतृत्व में सभी चमार बायकाट करते हैं। अंत में डेढ़ दिन के दाम देकर चौधरी-दलितों से सुलह करते हैं।

दलितों को समाज में कोई प्रतिष्ठा नहीं होती। अवैध यौन-संबंधों के कारण नारी-शोषण बड़ी मात्रा में होता है। स्त्री को केवल उपभोग्य वस्तु के रूप में देखा जाता है। 'धरती धन न अपना' उपन्यास की जस्सो, लक्षो जैसी दलित स्त्रियाँ आर्थिक अभाव के कारण चौधरियों के साथ अवैध संबंध बनाती हैं। अंधविश्वास के गर्त में डूबा यह दलित समाज नए विचारों को अपनाने में पिछड़ गया है। अशिक्षा के कारण दलितों को लूट लिया जाता है। सत्ता एवं पैसों के बल पर पूँजीपति वर्ग दलितों का शोषण करते हैं।

स्वतंत्रता मिलने के बाद भी हम देखते हैं दलितों की स्थिति में कोई फर्क नहीं आया है। दलितों का सामाजिक जीवन अत्यंत हीन है। जाति-भेद के कारण दलित समाज अन्य जातियों की तरह प्रगति नहीं कर सका। दलितों का पूरा समाज जीवन समाज का उच्च वर्ग चौधरी, जमींदार, साहूकार आदि लोगों पर निर्भर है। धार्मिक बाह्याडंबर एवं मंत्र-तंत्र के कारण अपना धर्म त्यागकर सिख, ईसाई, बौद्ध आदि धर्म में दलित समाज के लोग धर्मांतर कर रहे हैं। कहना सही होगा कि लेखक जगदीशचंद्र ने दलित समाज जीवन का

---

1. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 90

यथार्थ अंकन 'धरती धन न अपना' उपन्यास में किया है। प्रस्तुत उपन्यास दलित समाज जीवन का खुला दस्तावेज है।

3.3.1.2 उच्चवर्गियों द्वारा शोषित दलित समाज -

चातुर्वर्ण्य समाज व्यवस्था में उच्च वर्ग हमेशा निम्नवर्गीय दलित समाज का शोषण करता था। जमींदार, चौधरी, साहूकार, पटवारी, दरोगा जैसे लोग दलित लोगों के अज्ञान एवं अंधविश्वास का लाभ उठाकर उन्हें लूटते रहते हैं। सदियों से दलित समाज शोषितों की भूमिका निभाता आया है। दलित लोग अपने ऊपर हो रहे उच्चवर्गियों द्वारा शोषण का विरोध न करते हुए अपने नसीब को कोसते हुए जीवनयापन करते थे।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में चित्रित दलित समाज गाँव के जमींदार, चौधरियों के एहसान के बोझ तले दबा हुआ है। चौधरी हरनामसिंह खुले आम जीतू और संतू को पीटता है, परंतु उन्हें छुड़ाने के लिए कोई नहीं आता। लोग सिर नीचा कर तमाशा देखते रहते हैं। उनमें से किसी में भी हिम्मत नहीं कि वे चौधरियों का मुकाबला कर सकें। जीतू के पीटे जाने पर उसकी माँ निहाली व्यथाभरे स्वर में कहती है- "भला इसने चौधरी का क्या बिगाड़ा था जो इसे पुलसियों की मार मारी है। पूरा साल उसकी बेगार करता रहा और इसे सारी मेहनत का यह इनाम मिला।"[1] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि बेगार जैसी पद्धति से उच्चवर्गीय लोग दलितों का शोषण करते थे। चौधरी, जमींदार लोग अपनी प्रतिष्ठा के बल पर दलितों पर रोब जताते थे।

इन सबसे शोषित दलित स्त्रियाँ मानी जाएगी। पूरे विश्व में स्त्री-वर्ग पर ही अन्याय-अत्याचार होता रहा है। अन्य स्त्रियों की अपेक्षा दलित स्त्रियाँ समाज के उच्चवर्गियों द्वारा पीड़ित एवं शोषित दिखाई देती हैं। उच्चवर्गियों द्वारा हो रहे नारी शोषण के बारे में डॉ. अर्जुन चव्हाण के विचार दृष्टव्य हैं- "यौन-शोषण तो नारी जीवन का अभिशाप है जिसे वह सदियों से ढोती रही है। ऊपर से अगर वह दलित नारी हो तो क्या कहें ? उसके लिए दोहरा शाप। वह शोषण ही शोषण बर्दाश्त करती आयी, औरत होने के

---

1. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 20

कारण मर्द से और दलित होने से दर्द से।''[1] उक्त कथन से कहा जा सकता है कि दलित स्त्रियों की असहायता एवं मजबूरी का लाभ उठाकर समाज का उच्च वर्ग उन्हें बेइज्जत करता है। हरनामसिंह चौधरी का भतीजा हरदेव दलित युवति लक्षों की असहायता का लाभ उठाकर बलात्कार करता है। इसी प्रकार अन्य उच्च वर्ग के लोग दलित स्त्रियों को अपनी संपत्ति मानकर उनका यौन-शोषण करते हैं। दलित स्त्रियाँ चौधरी, जमींदारों की हवेलियों में छोटे-मोटे काम करती हैं, परंतु इन स्त्रियों को उनके काम के दाम कम मिलते हैं। कभी-कभी रूखी-सूखी रोटी को लेकर चूप रहना पड़ता है। इसका विरोध करने पर अगले दिन रोजगार न मिलने के डर से स्त्रियाँ शोषण को सहती हैं।

अज्ञानी एवं अंधविश्वासी दलित लोगों को लूटने के लिए उच्च वर्ग आगे-पीछे नहीं देखता है। धर्म के ठेकेदार, साहूकार, पटवारी, पुलिस लोग दलितों पर अनन्वित अत्याचार करते हैं। बाढ़ के समय पड़े शगाफ को भरने के लिए चमादड़ी के स्त्री-पुरुष तीन दिन तक काम करते रहते हैं, परंतु चौधरी, जमींदार लोग यह काम मुफ्त में काम करवाना चाहते हैं। दलित लोगों की मानसिकता ही ऐसी बनी है कि उनका संपूर्ण जीवन उच्चवर्गीयों पर अवलंबित है। दलित लोग इस मानसिकता से बाहर नहीं आते। बायकाट के समय सुलह-सफाई करते हुए दलित बुजुर्ग ताया बसन्ता मुंशी चौधरी से कहता है- ''हमने कब कहा है कि हमारा तुम्हारे बिना गुजारा है। हम तो सदा यही कहते आए हैं कि तुम हमारे मालिक हो और हम तुम्हारे कामे।''[2] अतः स्पष्ट है कि दलित लोग गुलामी करने में इतने आदि हुए हैं कि वे उच्च वर्ग से परे अपनी कल्पना भी नहीं करते। इसी स्थिति का लाभ उठाकर उच्चवर्गीय दलितों का हर प्रकारे शोषण करते रहते हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि उच्च वर्ग दलितों की मजबूरी का लाभ अपने स्वार्थ के लिए उठाते हैं। सदियों से शोषित दलित समाज अपनी चेतना खो गया है। अतः आधुनिक काल में धीरे-धीरे शिक्षा तथा शासन के विभिन्न प्रयत्नों से यह शोषण कम होता दिखाई देता है। आज दलित लोग अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गए हैं, जिससे उच्चवर्गियों द्वारा हो रहे शोषण पर पाबंद लगा हुआ है।

---

1. सं. रतनकुमार पांडे - अनभै, दिसंबर, 2004, पृ. 21
2. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 259

3.3.1.3 अस्पृश्य मानकर सवर्णों द्वारा शोषित दलित :

भारतीय समाज जाति एवं वर्णों के आधार पर विभाजित हुआ है। उच्च वर्ग एवं निम्नवर्गों में विभाजित समाज में निम्न वर्ग में शूद्र आते थे। शूद्र वर्ग को गलिच्छ एवं बूरे काम करने पड़ते थे। जिससे उच्चवर्गीय समाज शूद्रों को अस्पृश्य मानता था। अतः उच्च वर्ग शूद्रों या दलितों के स्पर्श तथा परछाई से भी परहेज रखते थे। यह स्पृश्य-अस्पृश्यता की समस्या मानव जाति के लिए कलंक थी। सभी लोगों का खून एक होते हुए भी स्पृश्य-अस्पृश्य के अलगाव से दलितों को जीवन जीना कठिन हो गया था, परंतु धीरे-धीरे कालपरिवर्तन के साथ स्पृश्य-अस्पृश्य भेद नष्ट हो गया। फिर भी कुछेक ऐसे देहात हैं जहाँ आज भी दलितों का स्पर्श तथा परछाई भी निषिद्ध मानी जाती है। समाज में फैली अस्पृश्यता के संदर्भ में डॉ. महेश भटनागर के विचार दृष्टव्य है- ''छुआ-छूत हिंदू समाज की एक भयंकर सामाजिक बीमारी है। धार्मिक अधंविश्वासों द्वारा पोषित छुआ-छूत की भावनाएँ हिंदू समाज के अधिकांशजनों में व्याप्त है। ये लोग चाहे अनपढ़ ग्रामीण स्त्री-पुरुष हो या पढ़े-लिखे नागरिक, दोनों अपने को इस सामाजिक कुरीति से मुक्त नहीं कर सके हैं।''[1] स्पष्ट है कि छुआ-छूत की प्रथा हिंदू धर्म में फैली एक अनिष्ठ प्रथा है, जिसके आधार पर उच्च वर्ग दलितों के साथ स्पृश्य-अस्पृश्यता का भेदाभेद करता है।

धार्मिक स्थानों पर स्पृश्य-अस्पृश्य भेद का कड़ाई से पालन किया जाता था। 'धरती धन न अपना' उपन्यास में चित्रित घोड़ेवाहा गाँव में भी स्पृश्य-अस्पृश्य भद का पालन पंडित संतराम जैसे लोग करते हैं। पंडित संतराम दलितों की परछाई से भी परहेज रहता है। छज्जू शाह अपनी दूकान पर चमारों के लिए अलग से हुक्का रखता है। छज्जू शाह कहता है- ''मैने अपने हुक्के के अलावा दो हुक्के और भी रखे हुए थे। एक जाटों के लिए और दूसरा चमारों के लिए।''[2] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि आज भी दलितों के प्रयेाग के लिए अलग-अलग वस्तुएँ रखी जाती हैं। देहातों में यही स्थिति दिखाई देती है। बाढ़ के समय चमार जाति की स्त्रियों को अस्पृश्य मानकर पादरी तथा पंडित संतराम पीने का पानी

---

1. डॉ. महेंद्र भटनागर - समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचंद, पृष्ठ - 116
2. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 38

तक भरने नहीं देते। चमारों का मंदिर प्रवेश भी निषिद्ध था। यह स्पृश्य-अस्पृश्यता का भेद केवल सवर्ण और दलितों में ही था ऐसा नहीं, बल्कि दलित समाज की जाति-उपजाति में भी अस्पृश्यता का पालन किया जाता है। मिस्त्री संतासिंह जाति से काश्तकार है, परंतु वह किसी चमार के घर पानी तक पीता नहीं। मिस्त्री संतासिंह कहता है- "मैं चमारों का काम इसी दुःख का मारा नहीं लेता। अभी पानी पीकर आया हूँ, फिर प्यास लगने लगी है।"[1] अतः स्पष्ट है कि दलित जाति-उपजाति में भी स्पृश्य-अस्पृश्यता का पालन किया जाता है। दलितों में कुछ ऐसी जातियाँ हैं जो स्वयं को उच्च मानती हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आज नगरों-महानगरों में स्पृश्य-अस्पृश्य का भेद नहीं मानते। फिर भी देहातों में अस्पृश्यता का पालन किया जाता है। सवर्ण लोग दलित समाज को अछूत मानकर दुजाभाव करते हैं। चाहे वह मंदिर में हो या अन्य सार्वजनिक स्थलों पर। अस्पृश्यता की इस अनिष्ठ प्रथा के कारण दलितों का जीवन नारकीय बन गया है। अतः यह दलित समाज अन्य वर्गों की अपेक्षा पिछड़ा हुआ दिखाई देता है। अज्ञान के कारण दलित समाज अपनी प्रगति नहीं कर सका। स्पृश्य-अस्पृश्य कहकर सवर्ण दलितों का शोषण करते हैं।

3.3.14 सरकारी अधिकारियों द्वारा शोषित दलित :

शासन में सरकारी अधिकारियों का स्थान महत्त्वपूर्ण माना जाता है। सरकारी अधिकारी जनता के सेवक होते हैं। समाज में रहते हुए सामान्य लोगों की सेवा करना तथा नियमन करना सरकारी अधिकारियों का काम होता है, परंतु आजकल सरकारी अधिकारियों को ज्यादह महत्त्व मिलने से वे अपने कर्तव्य को भूलते जा रहे हैं। वे अपने पद तथा ओहदे का गलत प्रयोग बिनाश्रम पैसा कमाने के लिए कर रहे हैं। नजराना लेना, रिश्वत लेना जैसी पद्धतियों से सरकारी अफसर आम जनता को लूट रहे हैं। सबसे ज्यादह आतंकित दलित वर्ग ही है।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में लेखक जगदीशचंद्र ने सरकारी अफसरों द्वारा हो रहे दलित समाज के शोषण पर प्रकाश डाला है। पुलिस, पटवारी, डाकघर के

---

1. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 140

सरकारी अफसर दलित समाज के अज्ञान का लाभ उठाते हैं। पटवारी का काम जमीन नापना तथा जमीन से संबंधित अन्य कामों को निपटाना होता है। दलित युवक काली अपने मकान की जमीन नापने के लिए पटवारी बुला लाता है। इसके लिए काली पटवारी को दो रुपये रिश्वत देता है। घड्डमसिंह चौधरी काली से दो रुपये लेते हुए कहता है कि ''वैसे तो इस काम की कोई फीस नहीं है। लेकिन अगर फीस न दो तो पटवारी को कभी जरीब नहीं मिलती और कभी गाँव का नक्शा खो जाता है।''[1] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि पटवारी लोग रिश्वत के लिए अपने ओहदे का गलत प्रयोग करते हैं। यह भ्रष्टाचार डाकघर में भी दिखाई देता है। डाकघर में मुंशी चौधरी काली के लखनऊ से आयी अस्सी रुपये के मनीआर्डर से पचहत्तर पैसे वसूल के नाम पर हड़प लेना चाहता है, परंतु मनीआर्डर भेजने से पूर्व ही वसूल लिया जाता है इस काली के कथन पर क्रोधित मुंशी पूरे पैसे देता है। सदियों से अज्ञान के अंधकार में लिप्त दलित समाज को लूटने का काम सरकारी अधिकारियों द्वारा हो रहा है। आर्थिक अभाव के कारण दलित हमारा कुछ नहीं कर सकते, इस प्रकार की मानसिकता सरकारी अधिकारियों की होने के कारण वे दलितों का शोषण करते रहते हैं।

आज सरकारी गैर-सरकारी कार्यालय भ्रष्टाचार के अड्डे बने हुए हैं। जहाँ देखिए वहाँ भ्रष्टाचार ही दिखाई देता है। ऐसी स्थिति में आम आदमी का जीना मुश्किल हुआ है। रिश्वत लेनेवाले अफसर भ्रष्टाचार को ही शिष्ठाचार समझ रहे हैं। ऐसे लोग गरीब-दलित लोगों का शोषण करने में जरा भी नहीं कतराते हैं। सरकारी अधिकारियों के शोषण से पीड़ित दलित समाज किसी भी सरकारी योजना का लाभ नहीं उठा पाता है। असल में स्वातंत्र्यपूर्व तथा स्वातंत्र्योत्तर काल में भी दलितों के शोषण में कमी नहीं आयी है।

3.3.1.5 शोषित दलित नारी -

पुरुष-प्रधान भारतीय संस्कृति में स्त्री का सदियों से शोषण होता आया है। उपभोग्य वस्तु के रूप से ज्यादह स्थान स्त्री को नहीं मिल पाया। अन्य वर्गों की नारी अपेक्षा दलित नारियाँ सबसे अधिक शोषित रही है। उच्चवर्गीय लोग दलित नारी को अपनी संपत्ति समझते हैं। उनकी आर्थिक विपन्नता तथा असहायता का लाभ उठाकर उच्चवर्गीय लोग

---

1. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 87

शारीरिक एवं मानसिक रूप से शोषण करते हैं। दलित नारी पर हो रहे शोषण के संदर्भ में डॉ. नगमा जावेद के विचार दृष्टव्य हैं- ''भारतीय समाज में यूँ तो नारी हमेशा से दलित रही है और फिर दलित नारी का तो कहना ही क्या ? उसे तो सामंती मानसिकता के लोग अपनी संपत्ति समझते आए हैं।''[1] अतः कहना सही होगा कि उच्चवर्गियों के अन्याय-अत्याचार से पीड़ित दलित नारी अपने भाग्य को दोष देते हुए शोषण को सह रही है। वह इसका विरोध नहीं कर पा रही है। लाचारी एवं विवशता का घुटनभरा जीवन दलित नारी जी रही है।

दलित नारी के शोषण का एकमात्र कारण आर्थिक अभाव रहा है। 'धरती धन न अपना' उपन्यास की नारी पात्र लक्षों, जस्सो, पाशो आदि उच्चवर्गियों द्वारा यौन शोषित होने पर भी कुछ नहीं बोलती। बल्कि दलित युवति लक्षो पर हरदेव चौधरी दिन-दहाड़े बलात्कार करता है, फिर भी दलित लोग इसका विरोध नहीं करते। सभी उच्चवर्गियों के परोपकार बोझ तले दबे हुए हैं। दलित समाज का पूरा जीवन उच्चवर्गीय लोगों पर अवलंबित होने से वे अपने ऊपर हो रहे अन्याय का विरोध करने में असमर्थ है। पंडित संतराम जैसे धर्म के ठेकेदार दलितों की परछाई से भी परहेज रहते हैं, परंतु किटोरा भर खीर का लालच दिखाकर चमार जाति की स्त्रियों से अवैध-संबंध रखता है। चौधरियों की हवेलियों में दिनभर काम करने पर कभी-कभी रूखे-सुखे टुकड़ों पर दलित स्त्रियों को अपना चरितार्थ निभाना होता है। दलित स्त्रियों को उनके काम का योग्य दाम नहीं दिया जाता, जिससे उनका सामाजिक, आर्थिक एवं शारीरिक रूप से शोषण होता आया है। दलित नारी के यौन-शोषण के संदर्भ में डॉ. कल्पना गवली लिखती हैं- ''इन जातियों को आर्थिक दृष्ट्या उच्च जाति के लोगों पर निर्भर रहना पड़ता है। अतः 'पानी में रहकर मगर से बैर कौन करे' वाली उक्ति के अनुसार लोग चुपचाप अपमान और जलालत का कड़वा घूँट पी जाते हैं। आर्थिक दृष्टि से कमजोर होने के कारण ही उनकी स्त्रियों को ऊँची जातिवाले लोगों के घरों में या खेतों में काम करना पड़ता है। जहाँ उनके एकांत का गैरलाभ उनकी लाचार दर्जे के कारण ऊँची जाति के लोग प्रायः लेते हैं।''[2] अतः कहना सही होगा कि दलित स्त्रियाँ आर्थिक विपन्नता एवं

---

1. सं. रतनकुमार पांडेय - अनभै, जुलाई-सितंबर, 2004, पृष्ठ - 75
2. डॉ. कल्पना गवली- प्रेमचंद तथा शैलेश मटियानी की कहानियों में दलित विमर्श, पृष्ठ- 155-156

असहायता के कारण उच्चवर्गियों से शोषित रही है। दलित नारी अपनी मुक्ति के लिए छटपटा रही है, परंतु समाज उसे आगे नहीं बढ़ने देता। विभिन्न सामाजिक बंधनों से बँधी हुई नारी अन्याय एवं पीड़ा को सहती आयी है।

3.3.1.6 अंधविश्वासी दलित समाज :

अज्ञान के कारण दलित समाज में अंधविश्वास का सबसे अधिक प्रभाव होता है। व्यक्ति के बुद्धि को मर्यादाएँ आती हैं तो ऐसे समय में वह अंध विश्वासों का सहारा लेता है। सामाजिक प्रथाओं के साथ-साथ धार्मिक रूढ़ियों-प्रथाओं का अनुकरण लोग करते हैं। दलित समाज के लोग धार्मिक अंधविश्वासों के अधीन हुए हैं। ईश्वर तथा धर्म को अति महत्त्व देने से समाज में अंधविश्वास बढ़ता ही गया दिखाई देता है।

अंधविश्वास में लिप्त दलित लोग सामाजिक रूढ़ियों-प्रथाओं का पुश्तों से पालन करते रहे हैं। 'धरती धन न अपना' उपन्यास में घोड़ेवाहा गाँव के चमारों में विभिन्न अंधविश्वासों को स्थान दिया गया नजर आता है। "तकिए में एक ओर टूटी-फूटी एक पुरानी कब्र थी। जिसके बारे में मशहूर था कि वह परमात्मा को पहुँचे हुए एक फकीर साई भुल्ले शाह का मजार है। कभी-कभार कोई दुखियारी, बीमारी या विपता की मारी या फिर गोद हरी होने की आकांक्षा पूरी करने या दुश्मन को मात देने के लिए इस कब्र पर शाम को सरसों के तेल का दीया जला जाती। इसके चारों ओर तेल गिरने से बड़े-बड़े काले और चिकने धब्बे पड़ गए थे।"[1] स्पष्ट है कि अपनी मनोकामना पूर्ति हेतु दलित स्त्री-पुरुष अंधविश्वास का सहारा लेते हैं।

बीमारी से छुटकारा पाने के लिए डॉक्टर की अपेक्षा मांत्रिक तांत्रिक बुलाए जाते हैं। कभी-कभी आर्थिक अभाव के कारण दलित लोग अस्पताल नहीं पहुँच जाते। ऐसे समय में वे झाड़-फूक, तंत्र-मंत्र, बलि देना जैसे कार्यों पर विश्वास रखते हैं। बीमारी के कारण मूर्छित चाची पर इलाज करने के लिए काली मांत्रिक को बुला ले आता है, परंतु इस अंधविश्वास के कारण चाची की मृत्यु हो जाती है। घोड़ेवाहा गाँव में तेज वर्षा के कारण बाढ़ आती है। बाढ़ को रोकने के लिए प्रयत्न न करने के बजाय सभी ईश्वर भरोसे रहते हैं। अंत

---

1. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 44

में बकरी की बलि देकर बाढ़ रोकने का प्रयास होता है। बाढ़ न रूकने पर बाँध काटकर उसमें से पानी का बहाव छोड़ देने से बाढ़ रूकती है। बकरी की बलि देते वक्त पंडित संतराम कहता है- ''शास्त्रों के अनुसार बलि का फल केवल उसे ही मिलेगा जो सामग्री पर नामा (पैसा) खर्च करेगा। मान लो ख्वाजा पीर को दया आ गई और उन्होने बलि स्वीकार कर ली तो उसका सारा फल बूटासिंह को ही मिलेगा। सारा गाँव चोबुर्द हो जाएगा। सिर्फ बुटासिंह का घर-बार बचेगा।''[1] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि समाज में धार्मिक अंधविश्वास भी बड़े मात्रा में थे।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अंधविश्वास के कारण दलित समाज अन्य सामाजिक वर्गों से पिछड़ता गया। इसी का लाभ उच्चवर्गीय लोगों ने उठाकर सदियों तक दलित समाज का शोषण किया। ईश्वर को प्रसन्न रखने के लिए बलि देना इस प्रथा से दलितों को आर्थिक हानि सह लेनी पड़ती थी। पैसों के लिए दलित लोग साहूकार, जमींदार आदि से कर्जा लेते हैं। नियत समय पर कर्जा न चुकाने पर बेगारी तथा ब्याज पर ब्याज लिया जाता है। अतः अंधविश्वास यह दलित समाज के लिए शाप बना हुआ है। दलित समाज में फैले अंधविश्वास का कारण के संदर्भ में डॉ. कल्पना गवली लिखती हैं- ''अशिक्षा के कारण ही अंधविश्वास है। शिक्षित व्यक्ति का चिंतन तार्किक और वैज्ञानिक होता है, अतः वह आसानी से अंधविश्वासों का शिकार नहीं हो सकता।''[2] स्पष्ट है कि दलितों में फैली अशिक्षा ही अंधविश्वास का एकमात्र कारण है। आजकल दलितों में हो रहे शिक्षा प्रसार के कारण अंधविश्वास में कमी आ रही है।

3.3.1.7 दलितों द्वारा प्रतिरोध -

उच्चवर्गियों के बोझ तले दबे हुए दलित समाज की सदियों से चेतना हर ली गई है। अशिक्षित, गरीब दलित अपने ऊपर हो रहे अन्याय-अत्याचार को सह लेते हैं, परंतु धीरे-धीरे शिक्षा के प्रचार के कारण दलित समाज के लोग अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गए हैं। शासन द्वारा निर्मित विभिन्न योजनाओं-आरक्षण का लाभ उठाकर दलित युवा वर्ग

---

1. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 217
2. डॉ. कल्पना गवली - प्रेमचंद तथा शैलेश मटियानी की कहानियों में दलित-विमर्श, पृष्ठ - 161

अपनी उन्नति कर रहे हैं। बड़ी संख्या में दलित नगरों-महानगरों मे रोजगार के लिए जा रहे हैं। देहातों में भी सवर्णों द्वारा हो रहे अन्याय-अत्याचार का दलित विरोध कर रहा है। सदियों से दबा-कुचला, शोषित दलित समाज शिक्षा के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों में आगे बढ़ रहा है।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में चित्रित घोड़ेवाहा के चमार में पुश्तों से अशिक्षित रहे हैं। जिससे दलित समाज में अंधविश्वास तथा सवर्णों द्वारा अन्याय-अत्याचार में बढ़ोत्तरी हुई है। दलित युवक काली चमारों मे चेतना जगाकर उनको अधिकारों के प्रति सचेत करता है। काली छः वर्ष शहर में रहकर वापस गाँव आया है। नगरों-महानगरों में व्यक्ति को पूर्ण स्वातंत्र्य होता है। अतः काली अपने गाँव में चमारों पर डाले गए बंधनों का विरोध करता है। मकान के लिए बुनियाद खोदते समय काली और मंगू के झगड़े में निक्कू जख्मी हो जाता है। पंचायत मे चौधरी, जमींदार लोग काली को जिम्मेवार मानते हैं। काली इसका विरोध करता हुआ कहता है कि "शरारत पहले भी होती थी लेकिन लोग चुपचाप सहन कर लेते थे। मैं उस समय चुप नहीं रह सकता जब पानी सिर से गुजरने लगता है।"[1] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि दलित अपने अधिकारों के प्रति जाग्रित हुआ है। आज का युवा दलित अपने समाज को इकठ्ठा कर अन्याय-अत्याचार का विरोध कर रहा है। बाढ़ के समय पूरी चमादड़ी के चमार चौधरी के जमीन से पानी निकालने तथा शगाफ भरने का काम करते हैं, परंतु तीन दिन होने के बाद भी चौधरी चमारों को काम के पैसे नहीं देता। अतः काली सभी चमारों को भड़काकर काम करने से इन्कार करता है। चौधरी के धमकाने पर काली कहता है- "मैं बिना पैसों के काम नहीं करूँगा। मैं किसी के पास गिरवी नहीं पड़ा हूँ जो बेगार करूँ।"[2] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि काली प्रतिनिधि के रूप में अन्याय-अत्याचार का विरोध करता है। सभी चमादड़ी के चमार काली के नेतृत्व मे सवर्णों के साथ बायकाट करते हैं। एकता के बल चमार चौधरियों से अपने काम का दाम वसूल करते हैं। चौधरी, जमींदार चमारों की चेतना को दबा नहीं सके। स्पष्ट है कि शिक्षित दलित समाज

---

1. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 84
2. वही, पृष्ठ - 236

सवर्णों द्वारा हो रहे अन्याय-अत्याचार का विरोध कर रहा है। आज का दलित वर्ग अपने सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनीतिक अधिकारों के प्रति सचेत हो गया है।

विभिन्न आंदोलन एवं संघटनों के माध्यम से दलित समाज अपने अधिकार प्राप्त कर रहा है। जहाँ भी शोषण हो वहाँ विद्रोह करने में भी दलित हिचकिचाते नहीं हैं। दलित लोगों की इसी मानसिकता के कारण दलितों पर हो रहे अन्याय-अत्याचार कम हुए हैं। व्यक्ति स्वातंत्र्य के कारण बेगार लेना जैसी पद्धतियाँ नष्ठ हो गई हैं।

3.3.1.8 दलित नारी का प्रतिरोध -

सदियों से पुरुषों की अपेक्षा दलित नारी पर समाज द्वारा अनन्वित अन्याय-अत्याचार किए गए। एक उपभोग्य वस्तु के रूप में स्त्री को देखा गया है। सवर्ण लोग दलित स्त्रियों को अपनी संपत्ति मात्र समझते आए हैं। आर्थिक अभाव तथा असहायता का लाभ उठाकर सवर्णों द्वारा दलित नारी की बेइज्जती होती थी, परंतु आजकल शिक्षा के उचित प्रसार तथा नए-नए विचारों के कारण स्त्री विद्रोहिणी बनी हुई है। नारी रोजगार के नए-नए आयामों को लाँघ रही है। आर्थिक स्वावलंबित्व के कारण अपने ऊपर हो रहे अन्याय-अत्याचार का वह विरोध करती है। नारी विद्रोह के संदर्भ में डॉ. मधु सन्धु के विचार दृष्टव्य हैं- ''सहस्त्रों वर्षों से भारतीय पुरुष सत्तात्मकता समाज उसे वर्जनाओं का विष पिलाता आ रहा है और आज वह विषकन्या बन गई है। उसे विषकन्या बनाने में विद्रोहिणी बनाने के मूल में नारी यंत्रणा का सुदीर्घ इतिहास है।''[1] स्पष्ट है कि आज नारी शिक्षित हुई है जिससे वह अपने हक को पहचानती है। समाज में चल रहे नारी-विमर्श के कारण नारी अबला न होकर सबला बन गई है।

दलित नारी अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करती नजर आती है। 'धरती धन न अपना' उपन्यास की दलित नारी पात्र ज्ञानों अपने अधिकार रक्षा हेतु तथा अन्याय-अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाती है। काली और मंगू के झगड़े में निक्कू चमार जख्मी हो जाता है। इस झगड़े में काली को जिम्मेदार ठहराने पर दलित युवति ज्ञानों अपने भाई मंगू द्वारा निक्कू चमार को चोट लगने का सच पंचायत के सामने कहती है। ज्ञानों दलित युवक

---

1. डॉ. मधु सन्धु - महिला उपन्यासकार : 21 वी शती की पूर्व संध्या के संदर्भ में, पृष्ठ - 10

काली से प्रेम करती है। काली से मिलने के लिए अपने भाई-माँ का विरोध सहते हुए, मंगू द्वारा मार-पीट होने पर भी वह आती है। ज्ञानों एक निड़र युवती है। वह काली के साथ शादी करने के लिए उसके साथ भाग जाना चाहती है। यहाँ तक की वह ईसाई धर्म का स्वीकार करने के लिए भी तैयार होती है। ज्ञानों पूरे समाज का विरोध सहते हुए भी अपने प्यार को पाना चाहती है। पूरे समाज के साथ वह विद्रोह करती है। इससे स्पष्ट होता है कि नारी जब अपना दिल किसी को देती है तो उसका साथ निभाने के लिए वह सब घर-बार, संसार तक छोड़ने को तैयार रहती है।

ज्ञानो ऐसी नारी पात्र है जो दलित नारी की व्यथा को व्यक्त करती है। गाँव के सवर्ण दिलसुख चौधरी तथा घड्ड़मसिंह चौधरी ज्ञानों को आजमाने का प्रयास करते हैं, परंतु ज्ञानों ने काली के सिवाय किसी को नहीं चाहा था। अतः वह जीवन के अंत तक काली से प्रेम करती है। काली के बच्चे की बिन-ब्याही माँ बनना चाहती है। स्पष्ट है कि नारी आज सबला हो रही है। समाज में प्रचलित प्रथाओं, रूढ़ियों का वह विरोध करती दिखाई देती है। आर्थिक दृष्टि से सक्षम नारी सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक स्वतंत्रता का लाभ उठाती है। दलित नारी शिक्षित हो रही है। सदियों से हो रहे अन्याय-अत्याचार से दलित नारी मुक्त हुई है। उसने अपने परिवार के साथ-साथ समाज के विकास में बड़ा ही योगदान दिया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सदियों से उच्चवर्गियों द्वारा पद्दलित समाज की स्थिति अत्यंत दयनीय है। 'धरती धन न अपना' उपन्यास में लेखक जगदीशचंद्र ने केवल पंजाब प्रांत के दलित समाज का सामाजिक यथार्थ प्रस्तुत किया है ऐसा नहीं। बल्कि पूरे भारतीय दलित समाज का चित्र प्रस्तुत किया है। अशक्षिा एवं अंधविश्वास के अंधकार मे डूबा हुआ दलित समाज उच्चवर्गियों द्वारा हो रहे शोषण का सहते आया है। वर्णाधिष्ठित समाज में शूद्र वर्ग में आनेवाली सभी दलित जातियाँ अस्पृश्य मानी जाती हैं। अस्पृश्य मानकर मंदिर प्रवेश निषिद्ध तथा सार्वजनिक स्थानो पर दलितों को आने-जाने के लिए मना था।

सवर्ण लोग दलितों को अपनी सपंत्ति मात्र समझते थे। दलित स्त्रियों की सामाजिक स्थिति समाज की अन्य नारियों की अपेक्षा अत्यंत निम्न थी। सवर्णों के अत्याचार

से शोषित दलित नारी विवशता से अन्याय-अत्याचार सहती थी। धर्म के नाम पर भी दलित समाज को लूटा जाता था। उच्चवर्गियों पर दलितों का पूरा जीवन अवलंबित होता है। ऐसे में दलित शोषण का विरोध नहीं करता था, परंतु काली जैसे दलित युवक रोजगार की अपेक्षा शहरों की ओर जाने से वहाँ की सभ्यता एवं संस्कृति से परिचित हुए। अतः उन्होंने सवर्णों द्वारा हो रहे अन्याय-अत्याचार का विरोध कर दलितों की एकता की ओर ध्यान दिया। आज यह दलित लोग इकठ्ठे होकर अपने अधिकारों को हासिल कर रहे हैं। दलित समाज की सामाजिक स्थिति में शिक्षा के प्रचार से निश्चित ही आज परिवर्तन आया है।

3.3.2 आर्थिक स्थिति का यथार्थ -

मानव समाज में जीवनयापन के लिए 'अर्थ' को अनन्य साधारण महत्त्व है। 'अर्थ' के माध्यम से व्यक्ति अपने परिवार का पालन-पोषण करता है। 'अर्थ' के स्वरूप पर समाज में उच्च वर्ग एवं निम्न वर्ग दो विभाग हुए हैं। अर्थ प्राप्ति के लिए व्यक्ति अनेक तरह के कार्य करता है, परंतु मानव समाज में 'अर्थ' के बढ़ते महत्त्व के कारण अर्थ जीवन का साध्य माना जा रहा है, परंतु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अर्थ केवल जीने का साधन है। लोगों ने अर्थ को अतिमहत्त्व देने से पैसा साध्य माना जाने लगा। पैसों को प्राप्त करने के लिए गलत रास्तों का भी प्रयोग लोग करते दिखाई देते हैं।

स्वातंत्र्यपूर्व काल में हमारे देश की अंग्रेजों ने आर्थिक लूट की थी। अंग्रेजों की यह प्रवृत्ति स्वातंत्र्योत्तर काल में भारतीय पूँजीपति वर्ग में चल पड़ी। पूँजीपति लोगों ने सत्ता एवं पैसों के बल पर समाज को लूटने का प्रयास किया। गरीब, मजदूर, दलित वर्ग के शोषण से पूँजीपति वर्ग धनिक ही होता गया। समाज में गरीब तथा धनिक में इतनी बड़ी दरार पड़ी है, जो कभी मिटनेवाली नहीं है। मजदूर, गरीब, दलितों से बेगारी लेना, ब्याज पर ब्याज लेना आदि से उच्च वर्ग धनिक होता गया। अशिक्षित दलित वर्ग सदियों से उच्च वर्ग द्वारा दबा-कुचला गया था। दलित समाज पुश्तों से उच्च वर्ग की सेवा करने लगा। आर्थिक दृश्टि से उच्च वर्ग पर अवलंबित दलित समाज शोषण की चक्की में पीसता हुआ चुप-चाप जीवनयापन करता था।

हिंदी साहित्य में सन् 1950 से लेकर मार्क्सवादी विचारों को लेकर रचनाकारों ने लेखन किया। समाज में एक ओर पूँजीपति वर्ग था तो दूसरी ओर गरीब, मजदूर, दलित वर्ग शोषित जीवन जी रहा था। पूँजीपति वर्ग से शोषित दलित वर्ग की आर्थिक स्थिति हीन थी। आर्थिक विपन्नता, अज्ञान एवं अंधविश्वास का लाभ उठाकर पूँजीपति वर्ग दलितों पर रोब जताता था। शोषक और शोषित नीति के खिलाफ रचनाकारों ने लेखन से आवाज उठाई। प्रगतीशील रचनाकार जगदीशचंद्र ने 'धरती धन न अपना' उपन्यास में पंजाब प्रांत के पूँजीपति वर्ग से शोषित दलित समाज की आर्थिक स्थिति का चित्रण किया है। एक इंच जमीन के लिए मोहताज दलित लोगों का जीवन गाँव के चौधरी, जमींदारों पर अवलंबित था। ऐसे में बेरोजगार, भूमिहीन दलितों पर उच्च वर्ग के साथ-साथ पटवारी, साहुकार, पुलिस भी अन्याय-अत्याचार करते थे। कभी-कभी साहूकारों का कर्जा न चुकाने पर बेगार लेना जैसी पद्धतियों से दलित लोग कुत्ते की जिंदगी जी रहे थे। अतः प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित दलित समाज की आर्थिक स्थिति के यथार्थ को निम्न पहलुओं से अध्ययन किया गया है।

3.3.2.1 उच्च वर्ग द्वारा दलितों का आर्थिक शोषण -

'अर्थ' के आधार पर समाज उच्च वर्ग एवं निम्न वर्ग में विभाजित हुआ। उच्च वर्ग सत्ता एवं पैसों के बल पर निम्नवर्गीय लोगों का हर प्रकार से शोषण करते आए हैं। आर्थिक विपन्नता में जी रहे मजदूर दलित वर्ग को न रहने के लिए और न ही जोतने के लिए अपने मल्कियत की जमीन है। पूर्णतः रूप से दलितों को उच्च वर्ग पर अवलंबित रहना पड़ता था। ऐसे में पूँजीपति वर्ग दलितों की विवशता मजबूरी का लाभ उठाकर कम दामों में अपना काम करवा लेते थे। साहुकार दलितों को कर्ज तो देते थे, परंतु कर्जा न चुकाने पर ब्याज पर ब्याज लगाकर दलितों को दोनों हाथों से लूटते थे।

प्राचीन काल में दलित वर्ग के लोगों को दास, गुलाम समझा जाता था। दासप्रथा के आधार पर समाज में बेगार प्रथा जैसी अनिष्ठ प्रथाएँ भी समाज में प्रचलित थी। 'धरती धन न अपना' उपन्यास मे दलित युवक मंगू तथा जीतू जैसे युवक चौधरियों की हवेलियों में बेगारी उठाते थे। मंगू के पिता ने चौधरी से पाँच सौ रुपये उधार लिए, परंतु दुर्भाग्यवश पिताजी की मृत्यु के बाद मंगू द्वारा चौधरी के पाँच सौ रुपये वापस नहीं किए

जाते। अतः हरनामसिंह चौधरी मंगू को अपनी हवेलियों में बेगार पर रखते हैं। मंगू पाँच-छः साल तक बिना दाम लिए चौधरी के यहाँ काम करता है, परंतु उसके पाँच सौ रुपए अब तक चुकते नहीं हुए थे। अतः लाचार एवं विवेश होकर मंगू चौधरी के यहाँ बेगार उठाता था।

साहूकार जैसे लोग दलितों को कर्जा देते थे। कर्जा न चुकाने पर दलितों को अपनी जमीन से बेदखल होने की नौबत तक आती थी। दलित युवक काली के चाचा सिद्धू ने सौ रुपये उधार लिए थे। पच्चहत्तर रुपये चुकाने पर चाचा की मृत्यु हो जाती है। चाचा की मृत्यु के पश्चात् छज्जू शाह काली से पच्चीस रुपयों पर सोलह रुपयों का ब्याज लेता है। काली को मालूम है कि अगर वह ब्याज नहीं देता है तो आगे कोई कर्जा नहीं देगा। गाँव के पटवारी, डाकघर के अफसर दलितों का आर्थिक शोषण करते हैं। दलित स्त्रियाँ चौधरियों की हवेलियों में झाड़ू लगाना, बर्तन माँजना, गोबर उठाना जैसे छोटे-मोटे काम करते रहती हैं। इन कामों से मिले पैसों पर दलित स्त्रियाँ अपना तथा अपने परिवार को पेट पालती थी। मुंशी चौधरी नन्दसिंह चमार से मुफ्त में ही जूते लेता था। नन्दसिंह के पैसे मांगने पर चौधरी कहता है- ''कुत्तया चमारा, तेरी यह मजाल ! अपनी दूकान पर मुझसे पैसे माँगता है। जूता बनाने से इन्कार करता है। मैं तेरी खाल उधेड़ लूँगा।''[1] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि उच्च वर्ग अपने रोब तले दलितों से मुफ्त में चीजें लेते थे। कभी-कभी मुफ्त में भी चौधरियों के यहाँ मालिश करवाकर ली जाती थी। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि उच्चर्गीय चौधरी, जमींदार, साहूकारों द्वारा दलितों का आर्थिक शोषण होता था। आर्थिक दृष्टि से शोषित दलित उच्च वर्ग के हाथों का खिलौना बन गया था।

3.3.2.2 सरकारी अफसरों द्वारा आर्थिक शोषण -

चौधरी, जमींदार, साहूकारों के साथ-साथ सरकारी अफसर भी दलितों का शोषण करने में पीछे नहीं होते। अपने पद का गलत प्रयोग करके अवैध धन इकठ्ठा करने में सरकारी अफसर माहिर होते हैं और इन सभी से शोषित समाज का दलित वर्ग ही होता है। अज्ञान के कारण रिश्वत देकर, नजराणा देकर, दलितों को अपने पैसे दिए बिना कोई सरकारी

---

1. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 200

काम ही नहीं हो पाता। हम शिक्षित हुए हैं फिर भी भ्रष्टाचार को रोक नहीं पाते। यह एक कड़वा सच है।

दलितों की असहायता का लाभ उठाकर पुलिस डंडे का डर पैदा कर शोषण करती है। सरकारी कार्यालय भ्रष्टाचार के अड्डे बने हुए हैं। सरकारी अफसरों द्वारा हो रहे भ्रष्टाचार के संदर्भ में डॉ. ज्ञानचंद्र शर्मा के विचार दृष्टव्य हैं- ''आज सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक किसी भी पहलू को ले, तो भ्रष्टाचार की झलक स्पष्टतः दिखाई देती है। सरकारी क्षेत्र में तो स्थिति और भी ज्यादा शोचनीय है। क्योंकि क्लार्क से लेकर बड़े-से-बड़ा राजपत्रित अधिकारी इसके स्वाद से अछूता नहीं है।''[1] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि आज ऐसा कोई क्षेत्र बचा नहीं है जहाँ भ्रष्टाचार न हो। समाज का दलित, मजदूर वर्ग ही भ्रष्टाचार से ज्यादा शोषित रहा है।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में दलित युवक काली के मकान की जमीन नापते समय पटवारी दो रुपये की फीस लेता है। इन सरकारी अफसरों को सरकार की ओर से तनख्वाह दी जाती है। फिर भी बिनाश्रम पैसा कमाने की आदत उन्हें पड़ गई है। डाकघर जैसे कार्यालय में मुंशी चौधरी वसूल के नाम पर मनीआर्डर से रुपये हड़प लेना चाहता है। लखनऊ से काली का अस्सी रुपये का मनीआर्डर आता है। मुंशी चौधरी सवा उनासी रुपये काली को देता है। पचहत्तर पैसे वसूल के नाम पर लेता है, परंतु काली के विरोध करने पर मुंशी पैसे वापस करता है। इस पर डॉ. बिशनदास काली से कहता है- ''जिस तरह बड़ी मछली छोटी मछली को खाती है उसी तरह बड़ा तबका छोटे तबके को एक्सपलायट करता है। यानी उसकी मेहनत का फल उसे नहीं खाने देता बल्कि खुद खा जाता है।''[2] अतः स्पष्ट होता है कि गरीब दलितों की असहायता के कारण सरकारी अफसर रिश्वत लेते हैं। भ्रष्टाचार करते हैं। अज्ञान एवं अंधविश्वासी दलित सरकारी अफसरों द्वारा हो रहे शोषण को सहते हुए भाग्य को कोसते रहते हैं।

---

1. डॉ. ज्ञानचंद्र शर्मा - आधुनिक हिंदी कहानी में वर्णित सामाजिक यथार्थ, पृष्ठ - 234
2. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 144

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि दलितों के आर्थिक शोषण का एकमात्र कारण अज्ञान रहा है। साहूकार, जमींदार, पटवारी, पुलिस जैसे लोग दलितों की असहायता एवं मजबूरी का लाभ उठाकर आर्थिक शोषण करते हैं। आज हम देखते हैं कि कोई भी सरकारी योजना हो वहाँ पर दलितों से रिश्वत लिए बिना क्लर्क, अफसर काम नहीं करते। रिश्वत देने पर कोई भी सरकारी काम कुछ ही क्षणों में हो जाता है। अन्यथा एकाध सरकारी काम हो तो वह सालों-साल पूरा नहीं किया जाएगा। उसमें त्रुटियाँ निकालकर व्यक्ति को परेशान किया जाता है। आज सभी लोगों की मानसिकता यही रही है कि कोई भी सरकारी काम घूस दिए बिना नहीं होता। अतः भ्रष्टाचार की कुवृत्ति के कारण समाज पिछड़ता जा रहा है। उच्चवर्गीय जन सदियों से दलितों का शोषण करते आए हैं। आज बेगार लेना, मुफ्त में काम करवाना जैसी पद्धतियाँ बंद हुई हैं। फिर भी उच्च वर्ग सत्ता एवं पैसों के आधार पर दलित समाज का निरंतर आर्थिक शोषण कर रहा है। धनिक और भी धनिक होते जा रहे हैं तो गरीब और भी गरीब। समाज में गरीब अर धनिक में विषमता बढ़ती जा रही है। यह एक समस्या समाज के सामने खड़ी है।

3.3.3 धार्मिक स्थिति का यथार्थ -

प्राचीन काल से समाज पर धर्म का प्रभाव रहा है। समाज में धर्म को अनन्यसाधारण महत्त्व दिया जाता है। हरेक व्यक्ति अपने धर्म द्वारा निर्धारित नियमों-प्रथाओं का पालन करते हुए जीवनयापन करता है। धर्म हर व्यक्ति की नीजी बात मानी जाती है। 'धर्म' के संदर्भ में डॉ. ज्ञान गुप्त लिखते हैं- ''सांस्कृतिक मान्यता प्राप्त विभिन्न पवित्र विश्वास ही धर्म है जो मानव-समाज को अपनी पूर्व पीढ़ियों से सामाजिक विरासत के रूप में प्राप्त होते हैं एवं अकस्मिक आपदाओं को सहन करने का संबल प्राप्त करते हैं।''[1] स्पष्ट है कि मानव समाज की प्रत्येक पीढ़ी में धर्म का महत्त्व बना रहा है। समाज में अनेकों धर्म हैं। हर धर्म के तत्त्व एवं नियम मानव समाज के हितकारक हैं, परंतु धर्म के ठेकेदार, ब्राह्मण वर्ग ने अपने-अपने धर्म को श्रेष्ठ मानते हुए उसमें विभिन्न कर्मकांड एवं बाह्याडंबरों को स्थान दिया। जिससे धर्म अपने मूल अर्थ से पथभ्रष्ट हो गया। हिंदू धर्म में फैले कर्मकांड एवं

---

1. डॉ. ज्ञानचंद गुप्त - स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्राम-चेतना, पृष्ठ - 189

बाह्याडंबर से समाज का दलित वर्ग पिछड़ता ही गया। जाति-भेद, अस्पृश्यता के कारण दलित धर्मांतरण करने लगे।

धर्म के नाम पर किए जा रहे भेदा-भेद से सांप्रदायिकता की समस्या निर्माण हुई। धर्म के ठेकेदार आम जनता को लूटने में कसर नहीं छोड़ते। दान-दक्षिणा, व्रत-वैकल्य के माध्यम से पुजारी, पुराहित वर्ग अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। मनुस्मृति ग्रंथ में दलितों पर अनेक निर्बंध बिठा दिए। जिससे दलित समाज के शोषण में दिनों-दिन बढ़ोत्तरी ही हुई। सवर्ण दलितों को अछूत मानकर दूर रखते थे। रहन-सहन से लेकर दलितों के खान-पान तक धर्म के कड़े बंधन डाले गए। सदियों से शोषित पद्दलित समाज को धर्म के अधिकार से भी भी सवर्णों द्वारा वंचित रखा गया।

अपने अधिकारों से वंचित दलित समाज को उनके अधिकार दिलाने के लिए समाज सुधारकों के साथ-साथ साहित्यकारों का भी योगदान महत्त्वपूर्ण माना जाता है। साहित्य के माध्यम से रचनाकारों ने दलितों की धार्मिक स्थिति का यथार्थ समाज के सामने प्रस्तुत किया है। प्रगतिशील रचनाकार जगदीशचंद्र ने 'धरती धन न अपना' उपन्यास में पंजाब प्रांत की दलितों की धार्मिक स्थिति का यथार्थ का अंकन किया है। दलित समाज केवल उच्चवर्गीय, सरकारी अफसरों द्वारा शोषित हुआ ऐसा नहीं बल्कि धर्म के ठेकेदारों ने भी दलित समाज का शोषण किया दिखाई देता है। अतः प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित दलित समाज की धार्मिक स्थिति निम्न पहलुओं से देखी जाएगी।

3.3.3.1 धार्मिक भेदा-भेद -

पूरी मानव-जाति का धर्म एक ही 'मानवता धर्म' माना जाता है। फिर भी समाज विभिन्न धर्मों में बँटा हुआ दिखाई देता है। हरेक धर्म के नीति-नियम, प्रथाएँ अलग-अलग हैं। इसी अलगता के कारण समाज में धर्म के नाम पर भेदा-भद किया गया। हिंदू धर्म में दलितों को अछूत करार देकर ईश्वरभक्ति तथा वेदपठन करना भी पाप माना गया। एक धर्म दूसरे धर्मवाले को कम समझता है। अपने धर्म को श्रेष्ठ सिद्ध करने से धार्मिक भेदभाव बढ़ता ही गया। यह भेदाभेद आचार-विचार, रहन-सहन के संदर्भ में भी दिखाई देने लगा। धार्मिक भेदाभेद के कारण आज धर्म एक अफीम बना हुआ है।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में चित्रित दलित समाज की धार्मिक स्थिति दयनीय थी। घोड़ेवाहा गाँव के दलितों को मंदिर प्रवेश निषिद्ध था। बाढ़ के समय दलित स्त्रियाँ पानी भरने के लिए मंदिर के कुएँ पर जाती हैं। वहाँ पर पंडित संतराम दलित स्त्रियों को अछूत कहकर भगा देता है। पादरी दलितों की सहायता करने के अटकले लगाता है कि सभी दलित ईसाई धर्म का स्वीकार करें। बायकाट के समय काली पादरी से मदद माँगने जाता है। इस पर पादरी कहता है- ''अनाज की तो बेरियाँ भिजवा दूँ लेकिन सवाल है रिश्ते का। अगर चमार ईसाई बिरादरी में शामिल हो गए होते तो हमारा मिशन इन पर फाकों की कभी नौबत न आने देता। हम बंदे को बंदे का राजक नहीं मानते। लेकिन हमारी भी मजबूरी है। मैं किसी रिश्ते से तुम्हारे मुहल्लेवालों की मदद करूँ ?''[1] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि एक धर्म के लोग दूसरे धर्मवाले को कम समझते थे।

समाज में एक ही धर्म में विभिन्न जाति-उपजातियाँ थी। उनमें धर्म के नाम पर उच्च-नीच यह भेदाभेद माने जाते हैं। प्रत्येक जाति अपने आपको दूसरी जाति से उच्च समझती है और अपने से नीच जाति की उपेक्षा करती है। नन्दसिंह चमार के सिख धर्म अपनाने पर उसका रिश्तेदार मिस्त्री संतासिंह पानी पीने में भी भेदाभेद मानता है। मिस्त्री सन्तासिंह कहता है- ''सिख बन जाने का यह मतलब तो नहीं कि वह चमार नहीं रहा। धर्म बदलने से जात तो नहीं बदल जाती।''[2] इससे स्पष्ट हो जाता है कि समाज में हरेक धर्म के आचार-विचार, रहन-सहन अलग माने जाते हैं। रोटी-बेटी, या विभिन्न धार्मिक कार्यों में धर्म का कड़ाई से पालन किया जाता है। गाँव के उच्चवर्गीय चौधरी, जमींदार लोग दलितों का धर्म कम समझते थे। किसी भी धार्मिक कार्य में दलित लोगों को निम्न स्थान दिया जाता था। अतः स्पष्ट है कि एक ही धर्म में उच्च-नीच इस प्रकार भेद किया जाता था। धार्मिक भेदा-भेद के कारण दलितों को समाज में निम्न स्थान दिया गया। धार्मिक भेदा-भेद के कारण दलित समाज अपने धार्मिक अधिकारों से वंचित रहा था।

---

1. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 257
2. वही, पृष्ठ - 141

3.3.3.2 धर्म के ठेकेदारों द्वारा शोषित दलित :

व्यक्ति के जीवन में धर्म तथ ईश्वर का अनन्यसाधारण महत्त्व है। तंत्र-मंत्र, यज्ञ-याग, पूजा-पाठ आदि द्वारा ईश्वर की कृपा प्राप्ति के लिए व्यक्ति धर्म के ठेकेदारों पर अवलंबित रहता है। इस स्थिति में धर्मों में कर्मकांड एवं बाह्याडंबरों को बढ़ावा देकर पंडित-पुरोहित, मुल्ला-मौलवी आम जनता को लूटते हैं। कहीं-कहीं धर्म के नाम पर गरीब, दलितों से सक्ती दान-दक्षिणा वसूल की जाती है। अज्ञानी एवं अंधविश्वासी दलित ईश्वर के प्रकोप से बचने के लिए बलि देना, तंत्र-मंत्र पर विश्वास रखते हैं। अतः धार्मिक कार्यों में पंडित-पुरोहितों का महत्त्व बढ़ जाने से दलितों का शोषण होता है।

'धरती धन न अपना' उपन्यास में घोड़वाहा गाँव के गरीब चमार जाति के लोग धर्म के ठेकेदारों से शोषित हैं। पंडित संतराम दलितों से सक्ती से दान-दक्षिणा वसूल करता है। धर्म की आड़ में किटोरा भर खीर का लालच दिखाकर दलित स्त्रियों से अनैतिक संबंध रखने में भी पंडित संतराम जैसे धर्म के ठेकेदार पीछे नहीं हटते। धर्म के नाम पर अनैतिकता का बोलबाला हुआ है। धर्म के ठेकेदारों की भ्रष्टता का पर्दाफाश करते हुए घड्ड़मसिंह चौधरी कहता है- ''पंडिता, तुम्हें पकी-पकाई रोटी मिल जाती है। मेंह हो या आँधी, धूप हो या छाँव तेरे हंद्दे (दान की रोटी) पक्के हैं। तुम्हें भक्ति नहीं सूझेगी तो और क्या सुझेगा ? दो दिन मेहनत करके रोटी खानी पड़े तो तुम्हें पता चल जाए कि पेट से बड़ा कोई पापी नहीं।''[1] उक्त कथन से कहा जा सकता है कि आज धर्म के नाम पर पाखंड फैलाकर पंडित-पुरोहित अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। चाहे नैतिक हो या अनैतिक, इसमें कोई फर्क नहीं रह गया है।

दलित समाज को अस्पृश्य मानकर मंदिर प्रवेश निषिद्ध, सार्वजनिक कुएँ पर पानी भरने पर पाबंदी तथा दलितों की अलग बस्ती आदि के द्वारा धर्म के ठेकेदार दलितों का धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक दृष्टि से शोषण करते हैं। शिक्षा के अधिकार से वंचित दलित लोग धर्म के बंधनों का पालन करते हैं। उन्हें सवर्णों से डर लगता है। अंत में कहा जा सकता है कि धर्म के ठेकेदारों ने विभिन्न कर्मकांड एवं बाह्याडंबर के प्रचार से धर्म को विकृत रूप दिया है।

---

1. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 173

3.3.3.3 धर्मांतरित दलित समाज :

हिंदू धर्म में फैले कर्मकांड एवं बाह्याडंबर के कारण दलित समाज की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। लोगों को हिंदू धर्म एक आफत लगने लगा था। इस स्थिति का लाभ उठाकर भारत में विभिन्न धर्म प्रचारकों ने अपने-अपने धर्म का प्रसार किया। सर्वप्रथम मुघल शासकों ने सत्ता एवं तलवार के बल पर हिंदुओं को मुस्लिम धर्म स्वीकारने के लिए मजबूर किया। अंग्रेज शासन में भी ईसाई धर्म-प्रचारकों ने भारतीय दलित समाज को लालच दिखाकर तो कभी-कभी डरा-धमकाकर धर्म-परिवर्तन के लिए प्रवृत्त किया। अतः तत्कालिन समाज का बहुसंख्य हिंदू वर्ग अन्य धर्मों में परिवर्तीत हुआ। यह धर्म-परिवर्तन की समस्या आधुनिक भारतीय सनातनी समाज में भी दिखाई देती है। हिंदू धर्म में फैले कर्मकांड के विरोध में डॉ. बाबासाहब आंबेडकर ने सन् 1956 में अपने अनुयायियों समवेत बौद्ध धर्म का स्वीकार किया। डॉ. बाबासाहब आंबेडकर के समर्थ नेतृत्व के कारण दलित समाज का उद्धार हुआ, परंतु दुर्भाग्य की बात यह हुई कि डॉ. बाबासाहब आंबेडकर के बाद दलित समाज को निस्वार्थी एवं समर्थ नेतृत्व नहीं मिला। जिसके कारण धर्मांतरित दलित समाज की आशा-अपेक्षाओं का मोहभंग हुआ।

धर्मांतरित दलितों पर अन्याय-अत्याचार बढ़ने लगे, परंतु धर्मांतर की समस्या समाज के सामने खड़ी हुई। लालच या हताश होकर आज भी धर्म-परिवर्तन हो रहे हैं। लेखक जगदीशचंद्र का उपन्यास 'धरती धन न अपना' में धर्मांतरित दलितों की समस्याओं पर प्रकाश डाला है। दलित अपनी समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए धर्म-परिवर्तन अपनाता है, परंतु सवाल यह उठता है कि क्या ? धर्मांतर से समस्या नष्ठ होती है। इसका जवाब नहीं होगा।

'धरती धन न अपना' उपन्यास का पात्र नन्दसिंह चमार हिंदू धर्म से बाज आकर पहले सिख धर्म का स्वीकार करता है। सिख होने पर कोई प्रतिष्ठा न मिलने के कारण फिर एक बार ईसाई धर्म का स्वीकार करता है। देखा जाए तो धर्म-परिवर्तन हिंदू धर्म के लोग ही करते हैं। धर्म-परिवर्तन के संदर्भ में पंडित संतराम के विचार दृष्टव्य हैं- ''कभी किसी दूसरे धर्मवाले को अपना धर्म बदलते हुए सुना है ? धर्म जब भी बदलता है तो हिंदू ही

बदलता है, क्योंकि उसे अपने धर्म-कर्म पर विश्वास नहीं रहा।''[1] अतः कहना सही होगा कि आज तक भारत में जो धर्म-परिवर्तन हुआ। वह हिंदू धर्म में ही हुआ। इसका एकमात्र कारण हिंदू धर्म में फैला कर्मकांड एवं बाह्याडंबर ही है।

धर्म-परिवर्तन से दलितों की सामाजिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं दिखाई देता है। नन्दसिंह चमार का न व्यवसाय बदला और न ही सामाजिक प्रतिष्ठा मिली। ईसाई होने पर भी नन्दसिंह अपना पुश्तों से चला आया जूते सिलाने का काम करता है। समाज नन्दसिंह के धर्म-परिवर्तन को स्वीकार नहीं करता। नन्दसिंह के धर्मांतर पर डॉ. बिशनदास अपनी राय देते हुए कहता है- ''ईसाई बनने से उसका हुलिया बदल जाएगा ? सब मजहब फरेब हैं। अमीरों और पूँजीपतियों ने आम लोगों को लूटने और उन्हें गुमराह करने के लिए ये ढकोसले खड़े किए हैं।''[2] स्पष्ट है कि आज-कल मजहब-फरेब के नाम पर पूँजीपति वर्ग अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि धर्म-परिवर्तन यह समस्या का हल नहीं है। कुछेक लोग अपने स्वार्थ के लिए मजहब का वास्ता देकर दंगा-फसाद करना चाहते हैं। डॉ. बाबासाहब आंबेडकर ने निस्वार्थी रूप से दलितों का धर्मांतर करके उन्हें न्याय दिया था, जीवन के अंत तक आंबेडकर दलितों के विकास के लिए झगड़ते रहे, परंतु खेद की बात यह है कि उनके पश्चात् उनके अनुयायी स्वार्थ में लिप्त दिखाई देते हैं। उन्होने केवल अपने दलित समाज बांधवों को बहकाकर अपना व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्ध किया है। सदियों से उच्चवर्गीयों से दबा-कुचला हुआ दलित वर्ग आज अपने ही लोगों से पीड़ित दिखाई देता है। चाहे वह सामाजिक दृष्टि से पीड़ित हो या राजनीतिक दृष्टि से। आज-कल राजनीति में दलितों को केवल वोटों का खजाना के रूप में देखा जा रहा है। यह दलित समाज की हार ही कही जाएगी।

3.3.4 राजनीतिक स्थिति का यथार्थ -

वर्तमान युग में राजनीति यह समाज का महत्त्वपूर्ण अंग माना गया है। समाज निर्माण तथा व्यक्ति के विकास के पीछे राजनीति का विशिष्ठ योगदान होता है। अतः

---

1. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 153
2. वही, पृष्ठ - 159

रचनाकार अपने साहित्य में तत्कालिन राजनीतिक परिवेश को अपने साहित्य में अंकित करता रहता है। साहित्य और राजनीति का घनिष्ठ संबंध रहा है। राजनीति में व्यक्ति की इच्छा, आकांक्षाओं की पूर्ति की जाती है। समाज का सदस्य होने के नाते व्यक्ति को विभिन्न राजनीतिक अधिकार प्राप्त होते हैं, परंतु स्वातंत्र्योत्तर काल में भारतीय राजनीति में फैले स्वार्थ के कारण आम लोगों का मोहभंग हुआ। राजनीतिक स्वार्थ, भ्रष्टाचार, अन्याय-अत्याचार से समाज का मजदूर, दलित वर्ग शोषित रहा। उच्चवर्गीय लोगों ने स्वार्थ हेतु दलित समाज की राजनीतिक चेतना हर ली है। राजनेता लोग दलित समाज को झूठे अश्वासन देकर वोट प्राप्त कर रहे हैं। आज दलितों को केवल 'वोट बैंक' का महत्त्व दिया है। चुनाव जीत जाने पर राजनेता लोग दलित समाज के विकास की ओर ध्यान न देकर अपना स्वार्थ देखते हैं। समाज के पद्दलित वर्ग में राजनीतिक चेतना जगाने का प्रयास साहित्यकारों ने किया है। आधुनिक काल का साहित्य दलितों में राजनीतिक जाग्रति लाने का प्रयास करता है।

अवसरवादी नेता लोगों की भी कमी हमारे समाज में नहीं है। ऐसे राजनेता दलित लोगों के साथ बहकी-बहकी बातें कर उन्हें अपने वश कर लेते हैं और दलितों से अपना राजनीतिक स्वार्थ सिद्ध करते हैं। लेखक जगदीशचंद्र ने 'धरती धन न अपना' उपन्यास में डॉ. बिशनदास के माध्यम से अवसरवादी प्रवृत्ति पर कुठराघात किया है। डॉ. बिशनदास जो की मार्क्सवादी विचारों से प्रेरित रहा है। समाज में फैले वर्ग संघर्ष को मिटाकर साम्यवाद का प्रचार वह करना चाहता है। अतः डॉ. बिशनदास दलित समाज के युवक काली, जीतू, ओमे आदि को बहकी-बहकी बातें बताकर अपने वश करने का प्रयास करता है। घोड़ेवाहा गाँव के चमार चौधरी, जमींदार के विरोध में बायकाट करते हैं। इस बायकाट का राजनीतिक लाभ डॉ. बिशनदास उठाना चाहता है।

राजनीति में समाज के दलित वर्ग को कठपुतली बनाकर राजनेता लोग अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। बायकाट के समय डॉ. बिशनदास दलित लोगों में वर्ग-संघर्ष की बातें फैलाकर अपनी पार्टी को बुलंद करना चाहता है। डॉ. बिशनदास कामरेड टहलसिंह से कहता है- ''कामरेड, तुम्हारी बात ठीक सही लेकिन काली हौसलेवाला जवान है। वह छः साल

शहर में भी रह आया है। इस टक्कर में हमें चमारों में केडर (पार्टी के सक्रिय कार्यकर्ता) तलाश और तैयार करने का बहुत अच्छा मौका मिलेगा। हमारे सैल में जाट, खतरी, ब्राह्मण सब जातियों के कामरेड हैं लेकिन चमार एक भी नहीं है।''[1] अतः स्पष्ट है कि डॉ. बिशनदास दलित युवक काली क माध्यम से अपनी पार्टी का विकास करना चाहता है, परंतु डॉ. बिशनदास का स्वार्थ जल्दी ही काली की समझ में आता है। बायकाट के समय काली डॉ. बिशनदास के घर मदद माँगने के लिए जाता है। डॉ. बिशनदास मदद न करते हुए वर्ग-संघर्ष पर लंबा-चौड़ा भाषण देता है। मदद न मिलने पर हताश काली से बन्तू चमार कहता है- ''ये तो थूक से पकौड़े पकाते रहे हैं।''[2] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि डॉ. बिशनदास दलित लोगों में राजनीतिक चेतना से अपना स्वार्थ देखता है।

बड़ी-बड़ी बातें करनेवाले राजनेता लोग समय पड़ने पर दलितों की मदद नहीं करते। राजनीतिक भ्रष्टाचार से दलित जनता पीड़ित है। आज सिर्फ चुनाव के समय दलित लोगों की याद हमारे राजनेता लोगों को आती है। दलितों पर हो रहे अन्याय-अत्याचार को सामने लाकर उससे राजनीतिक स्वार्थ सिद्ध करने के लिए विभिन्न पार्टियों की होड़ लगी होती है। डॉ. बाबासाहब आंबेडकर के पश्चात् दलित समाज को समर्थ नेतृत्व न मिलने के कारण राजनीतिक दृष्टि से दलित लोग पीछड़ गए हैं। अतः राजनीति में अवसरवादी प्रवृत्ति के लोगों के कारण दलित समाज का गैरलाभ उठाया जा रहा है। अतः दलितों की राजनीतिक चेतना हर समय दबाने का प्रयास समाज के राजनेता लोग कर रहे हैं, परंतु यह कहा जा सकता है कि काली जैसे कई दलित युवक समाज में हैं जो दलितों को इकठ्ठा कर उच्चवर्गियों से अपने राजनीतिक अधिकार तथा वर्ग-संघर्ष करने को ताकत रखते हैं। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अन्य वर्गों की अपेक्षा दलित वर्ग राजनीतिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है।

निष्कर्ष -

साहित्य मनोरंजन के साथ-साथ समाज-परिवर्तन का कार्य करता है। रचनाकार अपने साहित्य में समाज का यथा-तथ्य प्रस्तुतीकरण करता है। आधुनिक साहित्य

---

1. जगदीशचंद्र - धरती धन न अपना, पृष्ठ - 242
2. वही, पृष्ठ - 243

में आदर्श एवं यथार्थ की झाँकी दिखाई देती है। अपने युग और युगीन परिवेश से रचनाकार विमुख नहीं हो सकता है। इसी कारण आज साहित्य में मानवी समाज के यथार्थ-चित्रण करने पर जोर दिया जा रहा है। समाज में विभिन्न वर्गों एवं जाति-धर्म के लोग रहते हैं। हर एक सामाजिक वर्ग का रहन-सहन आचार- विचार तथा समस्याएँ अलग-अलग होती हैं। उच्च वर्ग से लेकर निम्नवर्गीय समाज का यथार्थ आज के साहित्य में देखा जा सकता है। अतः मानव समाज का सही रूप समझने के लिए उस समाज का वास्तविक रूप हमें पता चलना चाहिए। इसके लिए साहित्यकार को कल्पना की अपेक्षा यथार्थ का पालन करना आवश्यक होता है।

प्रगतिशील रचनाकार जगदीशचंद्र ने 'धरती धन न अपना' उपन्यास में सदियों से पद्दलित वर्ग का यथार्थ अंकन किया है। वर्णाधिष्ठित भारतीय समाज में शूद्र वर्ग में आनेवाला व्यक्ति समुदाय दलित समाज कहा जाने लगा है। दासप्रथा, गुलामी के कारण यह दलित समाज अन्य वर्गों से पिछड़ा हुआ दिखाई देता है। अज्ञान एवं अंधविश्वासी दलितों पर उच्चवर्गीय सदियों से अन्याय-अत्याचार, शोषण करते आए हैं। पंजाब प्रांत के घोड़ेवाहा नामक गाँव को आधार बनाकर लेखक जगदीशचंद्र ने दलित समाज की विभिन्न समस्याओं का यथार्थ प्रस्तुतीकरण किया है।

सदियों से उच्च वर्ग के रोब तले दबा-कुचला हुआ दलित समाज आज भी अपने अधिकारों से वंचित रहा है। अशिक्षा के कारण मजदूरी, बेगारी उठाना, पशूपालन, घास काटकर बेचना जैसे कामों से दलित समाज अपना चरितार्थ करता है। सवर्णों ने दलितों को अस्पृश्य मानकर शिक्षा, मंदिर प्रवेश, सार्वजनिक स्थलों पर आने-जाने पर कड़े बंधन लगाए। दलित समाज को पूँजीपति, उच्चवर्गीय लोग अपनी संपत्ति मात्र समझते आए हैं। अपने पुश्तों से उच्च वर्ग पर अवलंबित दलित लोगों को न रहने के लिए जमीन है और न ही जोतने के लिए जमीन। चौधरी तथा जमींदारों के यहाँ मजदूरी करके दलित अपना तथा अपने परिवार का पेट पालते हैं। उच्चवर्गों के साथ-साथ सरकारी अफसर पटवारी, पुलिस, क्लर्क आदि लोग भी दलितों पर अन्याय-अत्याचार तथा शोषण करते रहते हैं। दलित नारी की अवस्था तो अत्यंत हीन है। उच्चवर्गीय लोग दलित स्त्रियों की आर्थिक विपन्नता तथा

असहायता का लाभ उठाकर बेइज्जत करते रहते हैं। दलित स्त्रियों की नारकीय स्थिति के लिए दलित समाज की आर्थिक विपन्नता ही कारण रही है।

अंधविश्वासी दलित समाज में धर्म को लेकर विभिन्न प्रथा-परंपराएँ प्रचलित रही हैं। हिंदू धर्म में फैले बाह्याडंबर एवं कर्मकांड से दलित समाज का शोषण धर्म के ठेकेदार करते आए हैं। मनुस्मृति जैसे ग्रंथों में दलितों को अस्पृश्य मानकर उनके अधिकारों से वंचित रखा गया। हिंदू धर्म में फैले पाखंड एवं बाह्याडंबर से त्रस्त-पीड़ित दलित समाज अन्य धर्मों में परिवर्तीत हो रहा है। यह धर्म-परिवर्तन की लहर अन्य धर्मों की अपेक्षा हिंदू धर्म में सबसे अधिक दिखाई देती है। इसके लिए हिंदू धर्म में फैला दूराचार ही एकमात्र कारण रहा है, परंतु लेखक जगदीशचंद्र ने 'धरती धन न अपना' उपन्यास में धर्मांतरित दलित समाज का यथार्थ अंकन नन्दसिंह चमार के माध्यम से किया है। दो धर्मों का स्वीकार करने पर भी नन्दसिंह चमार के जीवन में कोई भी परिवर्तन नहीं आया है। डॉ. बिशनदास के शब्दों में कहा जाएगा कि धर्म-परिवर्तन यह एक पूँजीपतियों की ही चाल है। दलितों को गुमराह करने के लिए यह ढकोसले खड़े किए हैं।

अंत में कहा जा सकता है कि दलित समाज सदियों से उच्चवर्गियों द्वारा शोषित रहा है। आज दलित समाज केवल राजनीति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना गया है। एक 'वोट बैंक' के सिवाय समाज का अस्तित्व ही नहीं रहा है। फिर भी शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण दलित समाज में काफी परिवर्तन हो रहा है। नगरों-महानगरों की अपेक्षा देहाती दलित समाज में परिवर्तन की गति अत्यंत धीमी है। अतः 'धरती धन न अपना' उपन्यास दलित समाज का खुला दस्तावेज माना जाएगा। लेखक जगदीशचंद्र स्वयं गैर-दलित होते हुए भी दलित समाज के प्रति उनकी हमदर्दी, तिलमिलाहट प्रस्तुत उपन्यास के रूप में व्यक्त हुई है। उन्होने दलित समाज के यथार्थ को बखूबी से समाज के सामने परिलक्षित किया है।